वार्षिक रु. १००, मूल्य रु. १२

विवेक ज्योति

वर्ष ५५ अंक ४ अप्रैल २०१७

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

अप्रैल २०१७

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी मेधजानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५५
अंक ४

वार्षिक १००/– **एक प्रति १२/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ४६०/–

१० वर्षों के लिए – रु. ९००/–

(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124

IFSC CODE : CBIN0280804

कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस. अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।

विदेशों में – वार्षिक ३० यू. एस. डॉलर; ५ वर्षों के लिए १२५ यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)

संस्थाओं के लिये –

वार्षिक १४०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ६५०/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५

ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com

वेबसाइट : www.rkmraipur.org

आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९

(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

अप्रैल माह के जयन्ती और त्योहार

०५	रामनवमी
११	हनुमान जयन्ती
३०	शंकराचार्य, सूरदास जयन्ती

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री अभिषेक आनंद, हजारीबाग (झारखंड)	१०००/-
श्री जी. डी. द्विवेदी, टाटीबंध, रायपुर (छ.ग.)	२०००/-

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

यह भवन स्वामी विवेकानन्द के जन्मस्थान – रामकृष्ण मिशन स्वामी विवेकानन्द पैतृक निवास और सांस्कृतिक केन्द्र, कोलकाता का है।

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

क्रमांक	सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
१४६.	श्री सोनल चक्रवर्ती, टाटीबंध, रायपुर (छ.ग.)	शा. महाविद्यालय देवभोग, जिला - गिरयाबंद (छ.ग.)
१४७.	श्री गोपेश द्विवेदी, चकरभाटा, बिलासपुर (छ.ग.)	शा. इंजीनियरिंग कॉलेज, पोस्ट - कोनी, बिलासपुर (छ.ग.)
१४८.	श्री विनोद शर्मा, आमासिवनी, सड्डू रायपुर (छ.ग.)	ओम साँई शान्तिनिकेतन, हाईस्कूल आमासिवनी सड्डू (छ.ग.)
१४९.	श्रीमती शीला श्रीवास्तव, अरेरा कॉलोनी, भोपाल	शा. विधि महाविद्यालय, भाटापारा, जि.बलौदाबाजार (छ.ग.)
१५०.	श्री रमेश ए. देसाई, पोंडा, गोवा	शा. मेडिकल कॉलेज, तिवरा राष्ट्रीय राजमार्ग, नुनारी (उ.प्र.)
१५१.	श्री रमेश ए. देसाई, पोंडा, गोवा	लाला लाजपतराय मेमोरियल मेडिकल कॉलेज, मेरठ (उ.प्र.)
१५२.	श्री रमेश ए. देसाई, पोंडा, गोवा	एस. एन. मेडिकल कॉलेज, मोती कटरा, आगरा (उ.प्र.)
१५३.	श्री रमेश ए. देसाई, पोंडा, गोवा	बी.आर.डी. मेडिकल कॉलेज, गोरखपुर (उ.प्र.)
१५४.	श्री रमेश ए. देसाई, पोंडा, गोवा	शा. इंजीनियरिंग कॉलेज, सुनेल रोड, झालावाड़ (राज.)
१५५.	श्री सिंधेश्वर सिन्हा, देवरिया, सारण छपरा (बिहार)	एस.एम.एस मेडिकल कॉलेज एंड हॉस्पीटल, जयपुर (राज.)
१५६.	श्री ओम प्रकाश दुबे, समता नगर, इन्दौर (म.प्र.)	डॉ. सम्पूर्णानन्द मेडिकल कॉलेज, शास्त्री नगर, जोधपुर (राज.)
१५७.	श्री एस.के.अग्रवाल, पद्मनाभपुर, दुर्ग (छ.ग.)	प्राथमिक शाला, फिरंगीपारा, कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)
१५८.	श्रीमती रोशनी देवी जागिड़, लालगढ़,बीकानेर (राज.)	श्री मानव कल्याण ट्रस्ट, व्यास कॉलोनी, बीकानेर (राज.)
१५९.	श्रीमती प्रतिमा मिश्रा/आर.के. मिश्रा, बालाघाट (म.प्र.)	शा. पॉलीटेक्निक कॉलेज, रेसीडेन्सी रोड, जोधपुर (राज.)
१६०.	डॉ. राधेश्याम साहू, लाफिन खुर्द वाले, महासमुन्द	शा. माध्यामिक शाला, लाफिन खुर्द, महासमुन्द (छ.ग.)
१६१.	श्री बी.एस. बनछोर, कादम्बरी नगर, दुर्ग (छ.ग.)	शा. उच्च. मा. शाला, मर्रा, अंडा, जिला- दुर्ग (छ.ग.)
१६२.	श्रीमती श्रद्धा सुमन वर्मा, रिसाली, भिलाई (छ.ग.)	मनोहर शिशु संस्कार केन्द्र, मालवीय नगर चौक,दुर्ग (छ.ग.)
१६३.	श्री अभिषेक आनन्द, हजारी बाग (झारखण्ड)	शा. काव्योपाध्याय हीरालाल महाविद्यालय, अभनपुर (छ.ग.)
१६४.	श्री जी.डी. द्विवेदी, टाटीबंध, रायपुर (छ.ग.)	शा. उच्चतर माध्य. विद्यालय, चिरमिरी, जि.-कोरिया (छ.ग.)
१६५.	श्री जी.डी. द्विवेदी, टाटीबंध, रायपुर (छ.ग.)	शा. उच्चतर माध्य. विद्यालय, कुरई, जि. सिवनी (म.प्र.)
१६६.	श्री जी.डी. द्विवेदी, टाटीबंध, रायपुर (छ.ग.)	शा. उच्चतर माध्य. विद्यालय, बीजापुर (छ.ग.)
१६७.	श्री पृथ्वीराज शर्मा, ठण्डी, श्रीगंगानगर (राज.)	शास. सीनियर सेकण्डरी स्कूल, ठण्डी, श्रीगंगानगर (राज.)
१६८.	श्री कुँवर अनिरूद्ध प्रताप सिंह, गाडरवारा (म.प्र.)	मार्डन इन्टरनेशनल स्कूल, गाडरवारा, जि. नरसिंहपुर (म.प्र.)
१६९.	श्री दिनेश देवांगन, झलप, महासमुन्द (छ.ग.)	शा.उच्चतर मा. शाला बावनकेरा, झलप, महासमुन्द (छ.ग.)

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ५५ अप्रैल २०१७ अंक ४

कुर्वन्तु वो मंगलम्

श्रीमत्पङ्कजविष्टरो हरिहरौ वायुर्महेन्द्रोऽनलश्-
चन्द्रो भास्करवित्तपालवरुणाः प्रेताधिपाद्या ग्रहाः ।
प्रद्युम्नो नलकूबरौ सुरगजश्चिन्तामणिः कौस्तुभः,
स्वामी शक्तिधरश्च लाङ्गलधरः कुर्वन्तु वो मंगलम् ।।

– सर्व-ऐश्वर्यसम्पन्न ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव, वायुदेव, देवराज इन्द्र तथा अग्निदेवता, चन्द्रदेवता, भगवान सूर्य, धनाध्यक्ष कुबेर, वरुण और संयमनीपुरी के स्वामी यमराज, सभी ग्रह, श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न, नल और कुबेर, ऐरावत गज, चिन्तामणि रत्न, कौस्तुभमणि, शक्ति को धारण करनेवाले स्वामी कार्तिकेय तथा हलायुध बलराम, ये सभी आप लोगों का मंगल करें ।

गौरी श्रीः कुलदेवता च सुभगा भूमिः प्रपूर्णा शुभा,
सावित्री च सरस्वती च सुरभिः सत्यव्रतारुन्धती ।
स्वाहा जाम्बवती च रुक्मभगिनी दुःस्वप्नविध्वंसिनी,
वेलाश्चाम्बुनिधेः समीनमकराः कुर्वन्तु वो मंगलम् ।।

भगवती गौरी (पार्वती), भगवती लक्ष्मी, अपने कुलदेवता, सौभाग्यवती स्त्री, सभी धन-धान्यों से सम्पन्न पृथ्वी देवी, सावित्री और सरस्वती, कामधेनु, सत्य एवं पातिव्रत्य को धारण करनेवाली वशिष्ठ की पत्नी अरुन्धती, अग्निपत्नी स्वाहा देवी, कृष्णपत्नी जाम्बवती, रुक्मभगिनी रुक्मिणी देवी तथा दुःस्वप्ननाशिनी देवी, मीन और मकरों से संयुक्त समुद्र एवं उनकी वेलाएँ, ये सभी आप लोगों का मंगल करें ।

पुरखों की थाती

संक्षेपात्कथ्यते धर्मो जनाः किं विस्तरेण तु ।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ।।५४३।।

– हे संसार के लोगो, अधिक कहने से क्या लाभ! मैं संक्षेप में धर्म का सार बताता हूँ – दूसरों को सुख देना ही पुण्य है और दूसरों को पीड़ा देना ही पाप है ।

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः ।
कालेन फलते तीर्थं सद्यः साधुसमागमः ।।५४४।।

– सन्त साक्षात् तीर्थ हैं, अतः उनके दर्शन मात्र से ही पुण्य होता है । तीर्थ तो समय आने पर फलदायी होता है, परन्तु सन्त-सान्निध्य तत्काल फल देता है ।

संगः सर्वात्मना त्याज्यः स चेत्-त्यक्तुं न शक्यते।
स सद्भिः सह कर्तव्यः सन्तः संगस्य भेषजम्।।५४५

– सन्त लोग आसक्ति-रोग की औषधि हैं । यदि आसक्ति को पूर्णतः न त्याग सके, तो आसक्ति सन्तों से रखे ।

सत्येन धार्यते पृथ्वी, सत्येन तपते रविः ।
सत्येन वाति वायुश्च सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ।।५४६।।

– सत्य के कारण ही पृथ्वी सबको धारण करती है, सूर्य तपता है और वायु चलती है । सत्य ही सबका आधार है ।

सर्व एव जनः शूरो ह्यनासादितविग्रहः ।
अदृष्टपरसामर्थ्यः सदर्पः को भवेन्न हि ।।५४७।।

– युद्ध होने के पूर्व तक तो सभी स्वयं को शूर-वीर बताते हैं । दूसरे की शक्ति को देखे बिना कौन अहंकार नहीं करता !

विविध भजन

भज मन बाल चन्द्र गदाई

स्वामी रामतत्त्वानन्द

भज मन बाल चन्द्र गदाई ।
लेत जनम जो कौतुक किन्हा, निज तन भसम लगाई ।।
अवध में नाचे अवध बिहारी, ब्रज में बाल कन्हाई ।
बंग गाँव में नाचे गदाधर, निरखे चन्द्रा माई ।।
दूध खीर श्रीरामजी खावे माखन बाल कन्हाई ।
लाई चबेना गदाई खावे, पक्षी देख बिखराई ।।
अवध गली में रामजी, ब्रज वीथी कन्हाई ।
कामारपुकर की पुण्य गली में, बिचरे बाल गदाई ।।
अवधवासी श्रीराम निहारें, ब्रजवासी कन्हाई ।
कामारपुकुर के धन जन पुरजन, निरखे बाल गदाई ।।
तुलसीदास श्रीराम को ध्यावे, सूरदास कन्हाई ।
रामदास नित ध्यान लगावै, चन्द्रा बाल गदाई ।।

(मारुति नामावली)

धीर मारुति गम्भीर मारुति ।
वीर मारुति समरशूर मारुति ।।
शक्त मारुति रामभक्त मारुति ।
गीत मारुति संगीत मारुति ।।
योगी मारुति परम त्यागी मारुति ।
त्यागी मारुति विरागी मारुति ।।
पवन मारुति लंका–दहन मारुति ।
मौनि मारुति महाज्ञानी मारुति ।।
दक्ष मारुति लक्ष्मणरक्ष मारुति ।
सदय मारुति रामहृदय मारुति ।।

आरती अवध बिहारी की

स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती

आरती अवध बिहारी की,
दयामयी जनक दुलारी की ।।

सिंहासन सौहे युगल सरकार,
परस्पर हँसि हेरत हर बार ।
मधुर कछु बोल, लेत मन मोल,
ललित छवि प्रीतम प्यारी की ।। दयामयी..

पलोटत पाँय अंजनी लाल,
निरखि पद पंकज होत निहाल ।
कहत रघुराई, धन्य सेवकाई,
पवन सुत गिरिवर धारी की ।। दयामयी...

भरत जू ठाड़े भाव विभोर,
लखन रिपुदमन लाल कर जोर ।
लखें मुखचन्द, लेत आनन्द,
धन्य शोभा धनुधारी की ।। दयामयी...

आरती जो कोई जन गावैं,
प्रभो पद प्रेम अवसि पावैं ।
भनत राजेश, द्रवें अवधेश,
बोलिये जय भय हारी की ।। दयामयी...

(श्रीराम-नामावली)

सरयूतीर बिहारी दण्डक-वन संचारी ।
श्रीमदहलोद्धारी सज्जनमानसहारी ।।

देखन को घनश्याम की मूरति

हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल अनुपम, अद्‌भुत और स्वर्णिम काल है। काव्य की अनेक विधाओं और साहित्य काल के कई चरणों से गुजरते हुए काव्य की प्रखरता, समरसता, आध्यात्मिकता, दार्शनिकता और तात्त्विक विश्लेषण के साथ-साथ हृदयस्थ परमात्मा की अनुभूति भक्तिकाल के संत-कवियों में स्पष्ट परिलक्षित होती है। उनमें तुलसीदास और सूरदास लोकमानस के रग-रग में समाविष्ट हैं। जनमानस-पटल पर इन कविद्वय का अमिट प्रभाव है। गोस्वामी तुलसीदासजी भगवान श्रीराम की गाथा श्रीरामचरितमानस महाकाव्य की रचना कर जन-जन में पूज्य बनें, तो सूरदासजी भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं की रचना कर लोक वन्दनीय बनें।

श्रीकृष्ण दर्शनानुभूति की धरातल पर प्रतिष्ठित सूरदासजी की श्रीकृष्ण-लीला के पद, भक्तों और साधकों को आह्लादित करते हैं। वे पद श्रीकृष्ण की चेतन सत्ता से बौद्धिक तादात्मय तो करते ही हैं, आध्यात्मिक उद्दीपना करते हैं और मानसिक कल्मषों का नाश कर हृदयस्थ केशव की अनुभूति का रसास्वादन भी कराते हैं।

लोकदृष्टि से लोचनहीन कहलाने वाले सूरदासजी ने असंख्य लोगों के हृदय चक्षु उद्‌घाटित कर दिये। उन्होंने संसार को शिक्षा दी कि मैं दृष्टिहीन नहीं हूँ। क्योंकि मैं अपने उद्‌गम आदि स्थान ईश्वर से सम्बद्ध हूँ, जो सदा प्रकाशमय और सभी इंद्रियों और अखिल जगत का प्रकाशक है। अपने परमात्मा की ओर मेरी सजग दृष्टि है। दृष्टिहीन वे हैं, जो अपने परमधाम परमात्मा को भूल जाते हैं, उनकी ओर दृष्टि नहीं रखते। जिनकी दृष्टि भगवान की ओर नहीं है, वास्तव में वे दृष्टिहीन हैं।

जब स्वामीनारायण जी किशोरावस्था में प्रव्रजन कर रहे थे, तो ग्रामीण महिलाओं ने उस सुन्दर बालक को देखकर पूछा – कहाँ रास्ता भटक गये हो? बालक ने उत्तर दिया – माँ, रास्ता मैं नहीं भटका हूँ, रास्ता तो आप लोग भटक गयी हैं। मानो उनका कहना था कि ईश्वर की ओर जाने का पथ ही सच्चा रास्ता है, मैं तो उस पथ पर हूँ और आपलोग, तो ईश्वर के विपरीत संसार के पथ पर हैं।

ऐसे ही मानो सूरदासजी कहना चाहते हैं, मैं तो हमेशा अपनी अन्तर्दृष्टि से भगवान को देखता रहता हूँ, किन्तु वे अन्धे हैं, जो भगवान को नहीं देखते।

महादेवी वर्मा ने कहा है – **देखने को घनश्याम की मूरति चाहिए सूर की आँधरी आँखें**।'' जैसे सूरदास की जगत की ओर दृष्टि नहीं थी, वैसे ही जब हमारी दृष्टि लोक से परे लोकातीत होकर भगवान में समाविष्ट होगी, तब हमें भगवद्-आनन्द की अनुभूति होगी।

सूरदासजी के वे पद –

'निस दिन बरसत नैन हमारे।

सदा रहति पावस रितु हम पै, जब तें स्याम सिधारे।।'

गोपी-कृष्ण विरह वर्णन, भक्तिचित्त में ईश्वर-विरह-व्यथा उत्पन्न करती है। ऐसी निरन्तर हार्दिक वेदना भक्त हृदय में जब उमड़े, तब श्रीकृष्ण का प्राकट्य होता है।

भगवान के प्रति ऐसी वेदना के अनुभूतिपरक पदों के रचयिता सूरदासजी का जन्म संवत १५३५ में वैशाख सुदी पंचमी मंगलवार दिल्ली के पास सीही नामक ग्राम में एक निर्धन सारस्वत ब्राह्मण के घर में हुआ था। वे जन्मान्ध थे। वे बचपन से ही अपना घर छोड़कर लाठी के सहारे सीही के समीप के गाँव में रहने लगे। कहा जाता है कि वहाँ के जमींदार ने उनके रहने के लिए तालाब के किनारे एक कुटिया बनवा दी और भोजन की व्यवस्था भी कर दी, जहाँ वे लगभग १८ वर्ष की आयु तक रहे। उन्हें ब्रज का आकर्षण होने लगा। बाद में वे मथुरा-आगरा के बीच गौ घाट पर यमुना के तट पर शान्त एकान्त सुरम्य स्थान पर रहने लगे।

ऐसा माना जाता है कि उनकी व्रज में रहने की प्रबल इच्छा हुई। लेकिन इतनी दूर एक नेत्रहीन व्यक्ति को पहुँचायेगा कौन? उसके भोजन-आवास आदि की व्यवस्था कैसे होगी? लेकिन भगवान के भक्तों को कभी कोई चिन्ता नहीं रहती, क्योंकि भगवान स्वयं उनकी रक्षा करते हैं। उनकी इच्छा तीव्र हुई और वे लाठी टेकते हुए वृन्दावन के मार्ग पर चल दिए। भगवान को अपने भक्त की सदा चिन्ता रहती है। बालगोपाल भगवान ने प्रकट होकर सूरदासजी से पूछा – 'बाबा कहाँ जा रहे हैं? उन्होंने कहा वृन्दावन।

भगवान सूरदास जी का हाथ पकड़कर बड़े प्रेम से मधुर बातें करते हुए आगे-आगे चलने लगे। सूरदासजी बड़े आनन्द विभोर हो गए। लेकिन इन आनन्द के क्षणों में कब वृन्दावन आ गया, सूरदासजी को पता ही नहीं चला। वे तब समझे, जब गोपाल ने कहा, 'बाबा आप व्रज में आ गए, मैं अब जाता हूँ ।' इतना कहकर उनका हाथ छोड़ दिया। गोपाल के हाथ छोड़ते ही सूरदासजी को दिव्य स्पर्श के वियोग की अनुभूति हुई। वे समझ गये कि ये और कोई नहीं मेरे प्रभु ही हैं। तब उन्होंने बड़ा प्रसिद्ध मार्मिक दोहा कहा –

कर बिछुराये जात हौ निरबल जानि के मोहि।
हृदय से यदि जाहु तो, मर्द बखानू तोहि।।

इसके बाद गोपाल भागकर कहाँ जाता, सूरदासजी की व्यवस्था जो करनी थी। वह सूरदासजी के हृदय से कभी भाग न सका।

गऊ घाट में उन्होंने प्रारम्भिक दीनभाव और विराग के पदों की रचना की। यहाँ वे भक्तों के साथ सत्संग करते थे। उनके बहुत से सत्संगी उनके पदों का गायन सुनने आते थे। धीरे-धीरे उनकी ख्याति फैलने लगी। यहीं उनकी भेंट महाप्रभु वल्लभाचार्य जी से हुई थी। सूरदासजी ने अपना भजन उन्हें सुनाया था। ऐसा सुना जाता है कि सूरदासजी की भेंट तुलसीदास जी से भी हुई थी। वल्लभाचार्यजी अपने साथ सूरदासजी को गोवर्धन ले गये और वहाँ श्रीनाथजी के मन्दिर का कीर्तनकार बना दिया। यहीं सूरदासजी अपने जीवन के अन्त तक रहे और श्रीनाथजी के नित्य नये पद बनाकर उनका भजन-कीर्तन करते रहे।

सूरदासजी ने अपने काव्य से भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया। राधा-कृष्ण, गोप-गोपी, ग्वाल-बाल, वृन्दावन, यमुना आदि उनके रचना के केन्द्र-बिन्दु थे। मूलत: आध्यात्मिक तत्त्व का प्रतिपादन और भगवान की लीलाओं का लेखन-गायन और रसास्वादन उनकी रचनाओं का विषय रहा।

एक जन्मान्ध व्यक्ति के द्वारा भगवान के रूप का इतना सुन्दर वर्णन यह प्रदर्शित करता है कि वे बाह्य दृष्टि से भले ही नेत्रहीन हों, किन्तु वे आन्तरिक दृष्टि से सम्पन्न थे। नहीं तो, भगवान के नित्य नए श्रृंगार से सुसज्जित रूप का सटीक वर्णन कैसे सम्भव है !

मैंने एक कथा कहीं पढ़ी थी। एक बार वे रात में व्रज की गलियों से जा रहे थे। अँधेरी रात थी। एक खाई में वे गिर गए। वहाँ कोई निकालने वाला नहीं था। वहीं पड़े रहे। भगवान को अपने भक्त का दुख देखा नहीं गया। वे अर्धरात्रि में प्रगट हुए। सूरदास की आँखें खोल दीं। जीवन में पहली बार सूरदासजी ने अपनी आँखों से भगवान के भव्य रूप को देखा। श्रीकृष्ण ने कहा कि मैं तुम्हारी आँखें खोल देता हूँ। इससे तुम्हें अब कोई कष्ट नहीं होगा। सूरदासजी ने कहा – अब मैं इन आँखों से संसार को नहीं देखना चाहता। आप इन आँखों को पुन: वापस ले लीजिए। भगवान ने वैसा ही किया। बस गयी केवल श्याम सलोने राधे-श्याम की मूरति। भगवान ने उन्हें अन्तर्दृष्टि प्रदान की। उससे उन्हें श्रीनाथजी का कोई भी रूप अदृश्य नहीं रहा। नित्य प्रति श्रीनाथजी के नव श्रृंगार सहित पद रचना उनकी अन्तर्दृष्टि को द्योतित करती है। इससे सम्बन्धित एक बड़ी अच्छी घटना मिलती है।

एक बार श्रीनाथजी के पुजारी ने यह सोचकर श्रीनाथजी का कोई साज-श्रृंगार नहीं किया कि देखें सूरदासजी आज प्रभु के रूप का क्या वर्णन करते हैं। किसी को इसका पता तक नहीं चला। लेकिन प्रात: जब पट खोला गया, तो सूरदासजी से प्रभु का रूप छिपा नहीं रहा। उनके मुखारविद से पद प्रस्फुटित हुआ – **देख्यो रे प्रभु नंग-धड़ंगा।** सूरदासजी की इस दिव्य दृष्टि से सभी लोग आश्चर्यचकित हो गये।

सूरदासजी की रचनाओं में साहित्यकारों ने विभिन्न रस-अलंकार और श्रृंगार का समावेश स्वीकार किया है। किन्तु उनकी प्रमुख दृष्टि आध्यात्मिक है। जब सूरदासजी श्रीकृष्ण-लीला में उनके बाल-हठ का वर्णन करते हैं, तो भक्तों के हृदय में भक्ति-रस की गंगा प्रवाहित होने लगती है –

''मैया मैं तो चन्द्र खिलौना लैहों।
जइहों लोटि धरनि पर अबहीं, तेरी गोद न ऐहौं।
सुरभि को पयपान न करिहौं, बेनी सिर न गुहैहौं।

शेष भाग पृष्ठ १६५ पर

निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (४)

संकलक : स्वामी विदेहात्मानन्द

(भगिनी निवेदिता को लिखे स्वामीजी के पत्र)

मैं खूब परिश्रम कर रहा हूँ; और जितना ही कठोर परिश्रम करता हूँ, उतना ही स्वस्थ होता जा रहा हूँ। शरीर ने अस्वस्थ होकर निश्चय ही मेरा बड़ा उपकार किया है। अनासक्ति का सच्चा तात्पर्य अब मैं ठीक-ठीक समझने लगा हूँ; और मुझे आशा है कि मैं शीघ्र ही पूर्णत: अनासक्त हो सकूँगा।

हम अपनी सारी शक्तियों को किसी एक विषय की ओर लगाकर उसमें आसक्त हो जाते हैं; और उतने ही कठिन उसके दूसरे हिस्से पर हम शायद ही कभी ध्यान देते हैं – वह है क्षण भर में किसी भी विषय से अनासक्त होने, अपने को पृथक् कर लेने की क्षमता।

आसक्ति और अनासक्ति – इन दोनों शक्तियों का पूर्ण विकास ही मनुष्य को महान और सुखी बनाता है। ...

सभी वस्तुओं को चक्कर लगाकर वापस लौटना होगा। बीज से वृक्ष होने के लिए उसे धरती के नीचे कुछ दिन तक सड़ना होगा। गत दो वर्षों का समय इसी प्रकार धरती के भीतर सड़ने का समय था। मुत्यु के मुख में पड़कर मुझे पहले भी छटपटाना पड़ा था, परन्तु उसके अगले ही क्षण पूरा जीवन रूपान्तरित हो गया था। इसी तरह की एक घटना मुझे श्रीरामकृष्ण के पास ले आयी थी और एक अन्य घटना ने मुझे अमेरिका भेजा; और यही सबसे महत्त्वपूर्ण है। वह अब समाप्त हो चुकी है – अब मैं इतना शान्त हो चुका हूँ कि कभी-कभी मैं इस पर विस्मय करने लगता हूँ। मैं प्रतिदिन सुबह-शाम परिश्रम करता हूँ; जब जैसी इच्छा होती हो, भोजन करता हूँ; रात के बारह बजे सोता हूँ, परन्तु नींद कितनी अच्छी आती है!! इस प्रकार सोने की शक्ति मुझमें पहले कभी नहीं थी!

(सैन फ्रांसिस्को, २८ मार्च, १९००)

मेरे अनन्त आशीर्वाद लेना। जरा भी निराश मत होना। श्री वाहे गुरु, श्री वाहे गुरु! क्षत्रिय रक्त से तुम्हारा जन्म हुआ है। हमारे शरीर का गैरिक वस्त्र तो रणक्षेत्र की मृत्यु-शय्या है। सफलता नहीं, अपितु लक्ष्य-प्राप्ति के लिये मृत्यु का वरण करना ही आदर्श है। श्री वाहे गुरु! ...

कुटिल दुर्भाग्य की परतें काली और सघन हैं! परन्तु मैं ही मालिक हूँ। जिस क्षण मैं हाथ उठाता हूँ – वे तत्काल लुप्त हो जाती हैं। यह भय – यह सब कुछ निरर्थक है। मैं भय का भी भय हूँ, आतंक का भी आतंक हूँ। मैं निर्भय, अद्वितीय और एक हूँ। मैं अपने भाग्य का नियन्ता हूँ, कपालमोचन हूँ। श्री वाहे गुरु! वत्से, धीर बनो। धन अथवा किसी अन्य वस्तु की अधीनता मत स्वीकारना; तभी हमारी विजय सुनिश्चित होगी।

(सैन फ्रांसिस्को, २६ मई, १९००)

मैं सर्वदा कहता हूँ – माँ ही सब जानती हैं। माँ से प्रार्थना करो। नेता बनना बड़ा कठिन है। नेता को संघ के चरणों में अपना सब कुछ, यहाँ तक कि अपनी सत्ता तक को चूर्ण करके अर्पित करना पड़ता है।

(न्यूयार्क, २ जुलाई, १९००)

बस, यही तो जीवन है – मेहनत करते रहो, मेहनत करते रहो। इसके सिवा हम भला कर भी क्या सकते हैं? बस, मेहनत करते रहो, मेहनत करते रहो। कुछ होगा अवश्य, कोई-न-कोई रास्ता अवश्य खुलेगा। यदि ऐसा न हो – सम्भवत: वास्तव में ऐसा कभी नहीं होगा – तो फिर, तो फिर क्या होगा? हमारे जितने भी प्रयास हैं, वे सभी तात्कालिक हैं, उस चरम परिणति – मृत्यु से बचने के प्रयास हैं। अहा, सारे क्षतियों की पूर्ति करनेवाली मृत्यु! तुम्हारे बिना जगत् की न जाने क्या दशा होती?

ईश्वर को धन्यवाद है कि यह संसार न सत्य है और न स्थायी। भविष्य भला अच्छा कैसे हो सकता है? वह तो वर्तमान के ही फलस्वरूप है; अत: इससे अधिक खराब भले ही न हो, तो भी वह वर्तमान के अनुरूप ही होगा।

स्वप्न, अहा! स्वप्न! स्वप्न देखते रहो! स्वप्न

देखते रहो! स्वप्न का जादू ही इस जीवन का कारण है और उसके अन्दर ही इस जीवन का समाधान भी मौजूद है। स्वप्न, स्वप्न, केवल स्वप्न! स्वप्न के द्वारा ही स्वप्न को नष्ट करो। ...

मैं सारी दुनिया को कह रहा हूँ – जीवन एक अन्तहीन गोरखधन्धा है और भाग्य के असीम उत्थान-पतन की बातें – जिसका छोर ढूँढ़ना किसी के लिए भी सम्भव नहीं है; तो भी हर व्यक्ति उस समय यही समझने लगता है कि उसने उसे ढूँढ़ निकाला है और उसके द्वारा कम-से-कम उसे स्वयं तृप्ति मिलती है तथा क्षण भर के लिए वह स्वयं को भुलावे में डाल रखता है – है न ऐसा ही?

खैर, अब हमें महान् कार्य करने होंगे। परन्तु महान् कार्यों की कौन परवाह करता है? कुछ छोटे-मोटे कार्य ही क्यों न किये जायँ? हर कार्य एक जैसा ही उत्कृष्ट है। गीता तो छोटी चीजों में महानता को देखने की शिक्षा देती है। धन्य है वह प्राचीन ग्रन्थ! ...

शरीर के बारे में सोचने-विचारने के लिए मेरे पास ज्यादा समय नहीं है। अत: यह ठीक ही होगा। इस संसार में कुछ भी सदा के लिये भला नहीं है। परन्तु बीच-बीच में भूल जाते हैं कि भले का तात्पर्य केवल 'भला होना' और 'भलाई करना' है। ...

हम सभी इस संसार में अपनी-अपनी भली या बुरी भूमिका निभा रहे हैं। इस बात का मुझे पक्का विश्वास है कि जब यह स्वप्न टूट जायेगा और हम रंगमंच छोड़ चुके होंगे, तब हम खुले दिल से इन बातों पर हँसेंगे।

(पेरिस, २८ अगस्त, १९००)

पृथ्वी के इस छोर से एक आवाज तुमसे पूछ रही है, 'तुम कैसी हो?' क्या तुम विस्मित नहीं हो रही हो? वस्तुत: मैं एक विचरणशील पक्षी हूँ।

आनन्द-मुखरित व्यस्त पेरिस, गम्भीर प्राचीन कांस्टांटिनोपल, शानदार छोटा एथेन्स, पिरामिडों से शोभित काहिरा – इन सबको मैं पीछे छोड़ आया हूँ; और अब मैं यहाँ गंगातट पर स्थित मठ में – अपने छोटे-से कमरे में बैठकर लिख रहा हूँ। चारों ओर कैसी शान्ति और निस्तब्धता छाई हुई है! उज्ज्वल सूर्यकिरणों के तले विशाल नदी नृत्य कर रही है; यदा-कदा कोई मालवाहक नाव अपने चप्पुओं की ध्वनि से इस स्तब्धता को भंग कर जाती है।

यहाँ इस समय जाड़े का मौसम चल रहा है, परन्तु प्रतिदिन दोपहर का समय गरम तथा चमकीला होता है। यह दक्षिणी कैलीफोर्निया के जाड़े की तरह है। चारों ओर हरीतिमा तथा सुनहरा रंग फैला है; घास मखमल के समान बिछी हुई है; तो भी वायु शीतल, स्वच्छ तथा सुहावनी है।

(बेलूड़ मठ, १९ दिसम्बर, १९००)

तुममें सभी प्रकार की शक्तियाँ जाग्रत हों! स्वयं महामाया तुम्हारे बाहुओं तथा हृदय में अधिष्ठित हों! तुम्हारे अन्दर अदम्य महाशक्ति जाग्रत हो और यदि सम्भव हो, तो इसके साथ ही तुम्हें अनन्त शान्ति भी प्राप्त हो – यही मेरी प्रार्थना है। ...

यदि श्रीरामकृष्ण सत्य हों, तो जितना उन्होंने मेरा मार्ग-दर्शन किया, उतना ही या उससे भी हजार-गुना अधिक तुम्हारा मार्ग-दर्शन करते रहें!

(वाराणसी, १२ फरवरी, १९०२)

स्वामीजी के पत्रों में निवेदिता का उल्लेख

निवेदिता को लिखे अनेक पत्रों में से हमने चुने हुए अंश प्रस्तुत किये। जैसा कि स्वाभाविक है अन्य लोगों को लिखे गये पत्रों में भी निवेदिता का काफी उल्लेख मिलता है। वैसे ये उल्लेख ज्यादा विस्तृत नहीं हैं। यहाँ पर उन सभी को उद्धृत करने की आवश्यकता भी नहीं है।

निवेदिता के भारत आने के पूर्व उनके विषय में सूचना देते समय स्वामीजी ने उनकी कर्मक्षमता की बात का विशेष रूप से उल्लेख किया है। यथा आलासिंगा को (२० नवम्बर, १८९६) – 'विम्बल्डन की कुमारी एम. नोबल महान कर्मी हैं।' मेरी हालबेस्टर को (२५ जुलाई, १८९७) – 'विम्बल्डन की कुमारी मार्गरेट नोबल को तुम जानती हो क्या? वह मेरे लिए कठोर परिश्रम कर रही है। हो सके तो, उसके साथ पत्र-व्यवहार प्रारम्भ कर देना।' ओली बुल को (१९ अगस्त, १८९७) – 'कुमारी मार्गरेट नोबल नाम की एक अंग्रेज युवती भारत आकर यहाँ की परिस्थिति के साथ प्रत्यक्ष रूप से परिचित होने के लिए विशेष उत्सुक हैं, ताकि वे स्वदेश लौटकर इस देश के लिए कार्य कर सकें।' **(क्रमश:)**
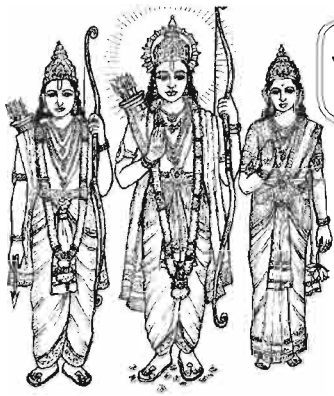
यथार्थ शरणागति का स्वरूप (२/२)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९९२ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलिखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है । – सं.)

इसीलिये रामचरितमानस में बड़ी सांकेतिक भाषा लिखी गई है न ! लंका की संध्या, अयोध्या की संध्या और मिथिला की संध्या, तुलसीदास जी ने तीन संध्याओं का वर्णन किया। लंका में जब संध्याकाल में सूर्यास्त हो रहा है, तब गोस्वामीजी ने कहा –

संध्या समय जानि दससीसा।

भवन चलेउ निरखत भुज बीसा।। ६/९/६

संध्या की बेला हो रही है। रावण घर की ओर चला। पर वह देख क्या रहा है? अपनी भुजाओं की ओर देखते चला जा रहा है। ये भुजाएँ हैं, जिसने संसार में किसको परास्त नहीं कर दिया, ये वे भुजाएँ हैं, जिसने कैलाश सहित भगवान शंकर को उठा लिया। अगर संध्या समय हम और आप यही सोचने लगे कि मैंने कितने बड़े-बड़े कार्य किए, मैंने कितना पुरुषार्थ किया, मैं कितना बुद्धिमान, विशिष्ट व्यक्ति हूँ, तो निश्चित रूप से हम उसी के अनुयायी होंगे। अपनी महिमा अपना पुरुषार्थ देखने की संध्या रावण की संध्या है।

अयोध्या में तो संध्या को बड़े पवित्र रूप में देखा जाता था। अयोध्या में दो प्रकार की संध्या हुई। मैं आशा करता हूँ आप एकाग्रता से उसे सुनेंगे। भगवान राम का जन्म मध्याह्न में हुआ। शास्त्र में उसे भी संध्या कहा गया है। शास्त्र कहते हैं कि संध्या तीन बार करनी चाहिये। उसमें उन्होंने मध्याह्न को भी स्थान दिया। इसका अभिप्राय है कि वैसे तो प्रकाश है, पर मध्याह्न के पहले की ओर देखें, तो प्रकाश पूर्णता की ओर जा रहा है और बाद में उसमें न्यूनता आने लगती है। भगवान श्रीराम चैत्रमास की नवमी तिथि को ठीक मध्याह्न में प्रगट हुए। अब एक और अनोखी बात गोस्वामीजी ने जोड़ दी। उन्होंने कहा कि भगवान श्रीराम का जन्म सूर्यवंश में हुआ, दिन में हुआ, मध्य दिन में हुआ, तो सूर्य की प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं रही। तब सूर्य ने अपने नियम में एक व्यतिक्रम उपस्थित कर दिया। सृष्टि में काल का बड़ा महत्त्व है। सारी सृष्टि काल के द्वारा ही संचालित है। आप देखते हैं कि पंचाग पहले से ही बता देता है कि सूर्य कब उदित होगा, चन्द्रमा कब उदित होगा। सचमुच सूर्य एक मर्यादा में निरन्तर गतिशील है और गतिशील होते हुए भी निरन्तर वह काल की परिधि में रहता है। किन्तु आज कुछ परिवर्तन हो गया। क्या? सूर्य ने अपनी वह मर्यादा छोड़ दी। बड़ी सांकेतिक भाषा है। याद रखिए, घड़ी को महत्त्व दीजिए, पर कभी कभी घड़ी को बन्द करना भी सीखिए। सूर्य ने एक अनोखा कार्य किया। गोस्वामीजी ने कहा –

मास दिवस का दिवस भा मरम न जानए कोय। १/१९५

दो बातें कहते हैं। एक तो जो रामनवमी थी, एक महीने तक सूर्य आकाश में उदित रहा। उसके साथ प्रश्न आया कि लोगों को तो लगा होगा कि आज क्या हो गया है? आज सूर्य अस्त क्यों नहीं हो रहा है? तो गोस्वामीजी एक वाक्य जोड़ देते हैं – 'मरम न जानए कोय।' कोई भी इस रहस्य को नहीं जानता है। अब इसके कई तात्पर्य हैं। अगर उसको तात्त्विक संदर्भ में देखें, तो उसका अभिप्राय है कि जिस ब्रह्म का आविर्भाव हुआ है, वह क्या है? अगर वह देश, काल की परिधि में हो, तो यह माना जाता है कि जो काल की परिधि में आ गया, देश की परिधि में आ गया, जो रूप की सीमा में आ गया, वह तो नश्वर ही होगा। तब अवतारवाद का क्या होगा? भगवान जब अवतार लेंगे, तो किसी देश में लेंगे, किसी काल में लेंगे, किसी रूप में लेंगे, तो उसे किस दृष्टि से देखेंगे? तो इसका समाधान इस रूप में किया गया। वह ब्रह्म भले ही कालातीत हो, देशातीत हो, रूप से परे हो, लेकिन वह भक्त की भावना से प्रेरित होकर देश में दिखाई देता है, काल में दिखाई देता है, व्यक्ति के रूप में दिखाई देता है। इसीलिये भगवान श्रीकृष्ण

जब कहते हैं कि मैं अव्यक्त हूँ, पर जो साधारण व्यक्ति है, अज्ञ व्यक्ति है, वह मुझे व्यक्त रूप में देखता है, तो उसका अभिप्राय मानो यह है कि भगवान जब दिखाई देते हैं, तो लगता है कि वे देश में आ गये, काल में आ गये, व्यक्ति के रूप में आ गये, पर उसके साथ-साथ वे उससे परे भी रहते हैं, अतीत भी रहते हैं, यह बात सैद्धान्तिक रूप में अनेक बार बताई गई है। यों कहा गया कि ईश्वर सगुण है कि निर्गुण है, तो रामायण में कहा गया कि एक विचारधारा संतों की यह थी, जो मानते थे कि ईश्वर निर्गुण निराकार है। दूसरों का आग्रह था कि वह सगुण-साकार है। रामचरितमानस में कहा गया –

अगुन सगुन गुन मंदिर सुन्दर। ६-११४ ख-३

निर्गुण सगुण विषम सम रूपं।

ज्ञान गिरा गोतीतमनूपं । ३-१०-११

वह निर्गुण और सगुण दोनों है। और इसका सांकेतिक अर्थ यह है कि बिना सगुण हुए लोगों को दर्शन हो नहीं सकता, इसीलिये वह सगुण है और इसके साथ वह अपने आप में निर्गुण हैं। इसको समझाने के लिए गोस्वामीजी ने बड़ा प्रचलित-सा दृष्टान्त दिया। उन्होंने कहा कि जैसे एक अभिनेता जब रंगमंच पर अभिनय करता है, तो किसी का पुत्र बनेगा, किसी का भाई बनेगा, किसी का शत्रु बनेगा। उस समय उसका कोई नाम होगा और रंगमंच पर लोग उसे उसी नाम-रूप में जानेंगे। अभिनेता की सफलता यह है कि जितनी देर वह है, उसी नाम को सुनकर वह बोल पड़े और नाटक में उसको जो कुछ बताया गया है, उसे वह प्रदर्शित करे। अभिनेता को देखकर दर्शक कितना चकित हो जाता है, कितना प्रभावित हो जाता है, कहीं वह रोता है, कहीं हँसता है। अभिनेता की विशेषता क्या है? जो भूमिका उसे दी गई है, उसे प्रस्तुत कर रहा है, पर गोस्वामीजी ने एक अद्‌भुत बात कही। श्रीमद् भगवदगीता से सिद्धान्त में कुछ भिन्नता सी लगती है। गीता में यह बात कही गई कि व्यक्ति के लिये निर्गुण कठिन है और सगुण सरल है। यह बात भी बिल्कुल ठीक है। इसका अभिप्राय है कि जो निराकार है, जो गुण से परे है, उसकी कल्पना व्यक्ति कैसे करेगा? लेकिन गोस्वामीजी एक दूसरा पक्ष रखते हैं, इस दृष्टि से विचार करके देखें –

निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ। ७/७३

निर्गुण रूप तो अत्यन्त सरल है, पर सगुण को कोई नहीं जानता। क्यों? तो उन्होंने कहा कि जब निर्गुण होता है, तब भले ही वह दिखाई न देता हो, पर वह इतना सुरक्षित है कि न उसको कोई काट सकता है, न कोई उसका विरोध कर सकता है, न कोई उसकी आलोचना कर सकता है। उसमें कोई घटना नहीं है, कोई चरित्र नहीं है, पर ज्यों ही सगुण होगा, त्यों ही घटनाएँ प्रारम्भ हो जायेंगी। श्रीरामकृष्ण को देखकर भ्रम उत्पन्न हो गया कि ये ईश्वर हैं कि नहीं? यह भ्रम साधारण व्यक्ति को ही नहीं, स्वामी विवेकानन्द के मन में बार-बार हुआ है। इसका अर्थ यह है कि वह तो कितना भी सजग और विवेकी व्यक्ति हो, जब वह चरित्र देखेगा, घटनाएँ देखेगा, तो उसको लगेगा कि ऐसा जो बोल रहा है या रो रहा है, व्यवहार कर रहा है, वह कैसे ईश्वर हो सकता है? तो ऐसी स्थिति में सगुण के साथ यह समस्या है और उसका समाधान क्या कहकर दिया गया? समझाने के लिये एक दृष्टान्त है, अब दृष्टान्त तो दृष्टान्त है, वह पूरा प्रभावित नहीं कर सकता –

जथा अनेक बेष धरि नृत्य करइ नट कोइ।

सोइ सोइ भाव देखावइ आपुन होइ न सोइ।। ७/७२ख

आपने अभिनेता को हरिश्चन्द्र के रूप में देखा और बड़ा स्वागत किया, उनके गले में माला पहनाई। उसने उस समय आपसे वैसा ही व्यवहार किया। पर उसकी विशेषता क्या है? वह अभिनेता यह जानता है कि वस्तुत: मैं हरिश्चन्द्र नहीं हूँ, केवल दिखला देता हूँ। लोगों को भले ही वह हरिश्चन्द्र लगे, पर वह स्वयं को हरिश्चन्द्र मानने की भूल करें, तो उसके घर दान माँगने वालों की ऐसी भीड़ इकट्ठी होगी कि वह बेचारा एक घंटा भी हरिश्चन्द्र बना नहीं रह पायेगा। वह निर्गुण निराकार ब्रह्म सगुण साकार होकर दिखा देता है। उसे कोई कहता है, क्या आप राम हैं? कोई कहता है, क्या आप कृष्ण हैं? कोई कहता है, क्या आप दुर्गा हैं, शिव हैं? वह सब में हाँ करता जायेगा। आप यह झगड़ा न करने लगिएगा कि तब उसने ऐसा कहा था, उससे उसने यह कहा था, अब मुझसे ऐसा कहता है। कई बार तो लोग यही कहते हैं कि हमें इस रूप में दर्शन हुआ, भगवान ने यह कहा। भगवान के कहने की बात तो ऐसी है कि वे अलग-अलग प्रसंगों में अलग-अलग बात कहते हुये मिलेंगे। कभी तो मानवीय आचरण करते हुए यह कहने लगेंगे कि सगुन होने लगा, नेत्र फड़कने लगा –

राम सीय तन सगुन जनाए।

फरकहिं मंगल अंग सुहाए।। २/६/४

वन जाने से पहले, भगवान का शुभ अंग फड़क रहा है। वे ईश्वर की तरह नहीं बोलते। विचार करने लगे कि इस सगुन का फल क्या है? अब ईश्वर भी सगुन-असगुन पर विचार करे, तो विचित्र ही लगेगा। वे परस्पर कहते हैं कि यह सगुन बताता है कि भरत आने वाला है –

भरत आगमनु सूचक अहहीं। २/६/५

किन्तु भरत जी बिल्कुल नहीं आए। उस सगुन का कोई फल भी नहीं हुआ। भगवान राम को तो वन जाना पड़ा। लेकिन भगवान राम ने यही कहा कि लगता है, भरत आने वाले हैं। क्यों? बोले –

भरत सरिस प्रिय को जग माहीं।
इहइ सगुन फलु दूसर नाहीं।। २/६/७

भरत से बढ़कर मुझे और कोई प्रिय नहीं है, इसलिए सगुन का और कोई फल हो ही नहीं सकता। तो लगता है कि भरत के समान कोई प्रिय नहीं है। सुग्रीव जो भगवान को भूल गये, चार महीने तक भगवान से मिलने नहीं आए, लजाए हुये थे। तो भगवान ने हँसकर स्वागत करते हुए कहा –

तब रघुपति बोले मुसुकाई।
तुम्ह प्रिय मोहि भरत जिमि भाई।। ४/२०/७

तुम तो मुझे भरत के समान प्रिय हो। वहाँ कहते हैं कि भरत के समान कोई प्रिय नहीं है और यहाँ कहते हैं कि सुग्रीव भरत के समान प्रिय हैं। लक्ष्मण जी मुस्कराकर देखने लगे। उन्होंने सोचा कि आपकी प्रमाण पत्र देने में उदारता दिखाई दे रही है। अगर आपको सुग्रीव और भरत एक जैसे लग सकते हैं, तो आपके पास कोई अनोखी ही दृष्टि हो सकती है, जो दूसरों में नहीं है। इसकी पराकाष्ठा तब हो गई, जब श्रीराम लंका से लौटकर अयोध्या आए और गुरुजी से बन्दरों का परिचय कराते हुए कहते हैं –

ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे।
भए समर सागर कहँ बेरे।।
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे।
भरतहु ते मोहि अधिक पिआरे।। ७/७/७,८

अब किस चौपाई को प्रमाण माने? 'भरत सरिस प्रिय को जग माहीं' को प्रमाण माने? या सुग्रीव के लिये कहते हैं, 'तुम प्रिय मोर भरत जिमि भाई' या जब कहते हैं, ये बन्दर मुझे भरत से भी अधिक प्रिय हैं, 'भरतहुँ ते मोहि अधिक पियारे'। अब यह न मान लीजिएगा कि ईश्वर किसी को भी संतुष्ट करने के लिये इस तरह की मिथ्या बात कह देते हैं। वस्तुत: इसका अर्थ तो यह हुआ कि जो परिपूर्ण दृष्टि है, उन्हें तो परिपूर्णता ही दिखाई देती है। वह उनकी अपनी दृष्टि है। इसीलिये तो लक्ष्मण जी ने जब श्रीभरत के विरुद्ध बोलना प्रारम्भ किया, तो उनको लगा कि भगवान राम कुछ बोलना चाहते हैं। उन्होंने कहा कि मैं आपसे नहीं पूछुँगा, क्योंकि मैं जानता हूँ कि आप क्या कहने वाले हैं। आप यही तो कहेंगे न कि भरत बड़े सज्जन हैं। सचमुच वे भी यही कहने वाले थे कि आप महान हैं, सर्वज्ञ हैं । पर उस सर्वज्ञता को मिटाने वाली तो आप में इतनी बाते हैं –

नाथ सुहृद सुठि सरल चित सील सनेह निधान।
सब पर प्रीति प्रतीत जियँ जानिअ आप समान।। २/२२७

आप तो सर्वत्र अपने आप को ही देखते हैं। जहाँ आपको कोई दिखाई देता है, उसे आप अपना ही प्रतिबिम्बि मान लेते हैं। परन्तु महाराज आपका यह प्रमाण पत्र आपकी दृष्टि से उपयुक्त होगा, पर यदि जीव सचमुच आपके प्रमाण पत्र को सत्य मान ले, तो ठीक नहीं होगा। **(क्रमश:)**

हृदय की तीव्र व्याकुलता के साथ क्या तुम ईश्वर के लिए रो सकते हो? लोग स्त्री, पुत्र या धन के लिए कितना रोते हैं, किन्तु भगवान के लिए कौन रोता है? जब तक बच्चा खिलौने लेकर खेलने में मग्न रहता है, तब तक उसकी माँ रसोई पकाने तथा गृहस्थी के अन्य कार्य करने में लगी रहती है । किन्तु जब बच्चा खेलने से ऊब जाता है और खिलौने फेंककर अपनी माँ के लिए रोने लगता है, तब माँ भात की हाँड़ी चूल्हे पर से उतार देती है और जल्दी से दौड़ती हुई बच्चे को गोद में उठा लेती है ।

– श्रीरामकृष्ण परमहंस

सारगाछी की स्मृतियाँ (५४)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य महासचिव महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

स्वामी प्रेमेशानन्द

प्रश्न – साकारवादी कैसे व्याख्या करते हैं कि ईश्वर सर्वत्र हैं?

महाराज – वे एक में मिला देते हैं। एक निर्गुण ब्रह्म को ही हम जानते हैं, जैसे छेद में से देखना, जैसे छत का जल सिंह के मुखौटे से होकर गिरता है, जैसे एक घाट पर स्नान करने से ही गंगा स्नान करना हो जाता है। अद्वैतज्ञान के बिना प्रत्येक जीव में नारायण-भाव नहीं रखा जा सकता है। जो लोग बातों-बातों में 'प्रभु की इच्छा' 'माँ की इच्छा' कहते हैं, वे लोग भ्रमित हो जाते हैं सद् वस्तु की उपेक्षा करते हैं, किन्तु इसे ठीक से जान लेना होगा कि हर जीव के देह-मन-बुद्धि के पीछे वे ईश्वर ही हैं, वे ही इस शरीर से लीला कर रहे हैं। तभी तो नारायण-भाव से सेवा होगी। एक कुष्ठरोगी सामने आ गया, उसकी सेवा कर दी, बस यहीं तक। वह जीवित बचा या मर गया, यह मेरा लक्ष्य नहीं है। कौन जानता है कि वे इस बार कुष्ठ रोगी बनकर आए हैं और अगली बार शायद महाराज बनकर आ जायँ।

प्रश्न – क्या हम लोगों का सेवा-कार्य 'लोककल्याण' के रूप में प्रचारित किया जाता है?

महाराज – प्रथमतः व्यक्ति कर्म किए बिना रह नहीं सकता, इसलिये कर्म को उपासना की भावना से करने की चेष्टा करता है। तदुपरान्त क्रमशः ज्ञान हो जाने पर 'सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेः'– अपने स्वभाव के अनुसार वैसा प्रयत्न होता है। फिर उसके लिये यह कर्म नहीं रह जाता, उपासना हो जाती। फिर यह भी हो सकता है कि कर्मत्याग हो गया। हम लोगों में कोई-कोई ऐसे भी हैं, जिन्हें ज्ञान हो गया है, फिर भी उन्हें काम करना पड़ता है। कल्पना करो कि तुम अध्यापन करते हो, उपासना-भाव से करते-करते तुम्हें ज्ञान हो गया। तब तुम उसे शिक्षण-कर्म नहीं समझोगे, सचमुच ईश्वर की पूजा समझोगे। वास्तविक ज्ञान रहना चाहिए – ईश्वर क्या है? जीव क्या है? जीवन क्या है? मेरा सम्बन्ध क्या है? उसके साथ उपासना द्वारा मन को सूक्ष्म करके तीव्रता उत्पन्न करनी होगी, उसी मन के द्वारा ब्रह्म-लक्ष्य संधान करने हेतु कर्म करना होगा, तभी तो योग होगा।

२६-११-१९६०

प्रश्न – हम लोग बहुत उदारवादी हैं, तो क्या इससे निष्ठा की हानि नहीं होती? क्या संन्यासी बहुत प्रेमालु नहीं होगा? वह तो 'सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मानि' (अपने को सभी जीवों में और सभी जीवों को अपने में) देखेगा !

महाराज – हम लोग भी कैसे रसिक हैं ! कोई 'सोऽहम्' कहता है, उसी सुर में हम भी बोलते हैं। फिर कोई 'दासोऽहम्' कहता है, तो हम तुरन्त कहते हैं कि जीव की सामर्थ्य कहाँ कि वह 'सोऽहम्' कह सके ! अल्लाह, कृष्ण, ईसा, यहाँ तक कि मधुर-भाव भी हमारी दृष्टि में खराब नहीं है। हम जानते हैं कि सभी उसी एक निर्गुण ब्रह्म को ही देखते हैं। हम लोग केवल एक को लेकर क्यों रहें? ठाकुर हम लोगों को स्वयं सब करके दिखा गये हैं, ठाकुर ने सभी साधनाएँ स्वयं ही की थीं। वे कहते हैं, मैं एकांगी क्यों बनूँगा? मैं ईश्वर की विभिन्न रूपों में उपासना करूँगा।

एक बार मैं एक रामानुज-सम्प्रदायवादी आश्रम में गया था। वहाँ एक वृद्ध साधु बैठे थे। उनकी आयु अस्सी वर्ष थी। वे चुपचाप, अन्तर्मुखी भाव में थे। वे लोग जानते हैं कि संन्यासी लोग कृष्ण, नारायण नाम सुनकर थोड़ा व्यंग्य कसते हैं। उन्होंने कहा, एकमात्र नारायण को छोड़कर और कोई भी मुक्तिदाता नहीं है। मैंने प्रणाम करके कहा, ठीक बात है। नारायण के अतिरिक्त मुक्तिदाता कौन है ! जब कोई कहता कि कृष्ण के अतिरिक्त, अल्लाह के अतिरिक्त, ईसा के अतिरिक्त कोई मुक्तिदाता नहीं है, तब हम लोग

कहते हैं, ठीक बात है। क्योंकि हम लोग यह जानते हैं कि एक निर्गुण ब्रह्म ही विविध रूपों में विद्यमान हैं। किन्तु हम लोग सामान्य आधार के व्यक्ति हैं, मधुर-भाव आदि से दूर रहकर चलेंगे, क्योंकि इसमें पतन का भय है।

प्रश्न – कर्म करने से ही कर्मफल होता है, इसलिए क्या इस अनादिमूलक अज्ञान से बाहर निकलने का कोई मार्ग नहीं है?

महाराज – मैं तो मुक्त हूँ, किन्तु भ्रमवश देह-मन-बुद्धि का बोझ कंधे पर लादकर अपने स्वरूप को भूलकर चीत्कार कर रहा हूँ। अब स्वरूप में वापसी के लिए बोझ को तो फेंकना ही होगा। इतने दिनों तक देह-मन-बुद्धि की दासता कर ली, अब और नहीं करूँगा। किन्तु कर्म का आलस्य जायेगा कैसे? ठीक है, मन को ईश्वर की ओर जितना ही लगाओगे, देखोगे कि कर्म उतना ही घटता जायेगा, फिर कर्म कर्म नहीं रह जायेगा – कर्मयोग (योग: कर्मसु कौशलम्') अथवा निष्काम कर्मयोग हो जायेगा। इस प्रकार करते-करते कर्म समाप्त होते ही तुम जो थे, वही हो जाओगे।

इसलिए देखा जाता है कि कर्म द्वारा मुक्ति या ज्ञान नहीं होता। ज्ञान तो है ही। कर्म समाप्त होते ही ज्ञान होगा। चित्तशुद्धि के लिए कर्म नहीं करना होता, कर्म समाप्त होने के कौशल का अवलम्बन करने से ही ज्ञान होता है।

(क्रमशः)

उषाकाल में राम का रूप ध्याओ

समर्थ रामदास

घनश्याम श्रीराम सौन्दर्यमूर्ति ।
महाधीर हैं शूर विख्यात कीर्ति ।।
पुकारो उन्हें संकटों को भगाओ ।
उषाकाल में राम का रूप ध्याओ ।।
असामान्य हैं राम कोदंडधारी ।
उन्हें देखते काल हो भीति धारी ।।
वृथा मानवों की न गाथा सुनाओ ।
उषाकाल में राम का रूप ध्याओ ।।

पृष्ठ १५८ का शेष भाग

ह्वै हौं पूत नन्दबाबा कौ, तेरौ सुत न कहैहौं।।

तभी माँ यशोदा कहती हैं कि मेरा कान्हा इतना हठी है कि खेलने को चन्द्रमा माँगता है –

ऐसौ हठि बाल गोविन्दा।

अपने कर गहि गगन बतावत, खेलन को माँगे चन्दा।।

'मैया री मोहे माखन भायो' में जहाँ कान्हा का माखन प्रेम दृष्टिगोचर होता है, वहीं गोपियों द्वारा माँ यशोदा को कान्हा के माखन चुराने का उपालम्भ देने पर 'मैया मैं नहीं माखन खायो' की सहज अभिव्यक्ति से भक्त-चित्त में बरबस कान्हा आकर क्रीड़ा करने लगता है। भगवान श्रीकृष्ण के विरह, वियोग में गोपियों की विकलता और सर्वोपरि श्रीकृष्ण के ईश्वरत्व और लीलाओं का प्रतिपादन कर सूरदास जी की वाणी धन्य हुई।

'मेरे प्रभु अवगुन चित न धरो' में भक्त की भगवान से तर्कसंगत दीनभाव से अपराध-क्षमा की झलक मिलती है।

सूर-काव्य में शृंगार श्रीकृष्ण का और संयोग भी कान्हा से है। गोपियाँ श्रीकृष्ण का चिन्तन करते-करते श्रीकृष्णमय हो गईं। शाश्वत श्रीकृष्ण से उनका तादात्म्य हो गया। माधव रटते-रटते माधव से तादात्म्य हो माधव-भाव को प्राप्त हो गईं। तन-मन की सुध-बुध खो गई – **'माधव माधव माधव रटइत राधा भैल मधाई।'** सूरदासजी ने लिखा – **राधा माधव माधव राधा कीट भृंग गति ह्वै जु भई।** भक्तिसाम्राज्ञी मीरा ने गोपियों के कृष्ण-तादात्म्य के काव्य-सौन्दर्य को बड़े सुन्दर ढंग से चित्रित किया है –

ले मटकी सिर चली गुजरिया,
आगे मिले बाबा नन्द जी को छौना।
दधि को नाम बिसरि गई प्यारी,
ले लेहु रे कोई श्याम सलौना।।

गोपियाँ दही बेचने निकली हैं। कृष्ण के प्रेम में वे इतनी उन्मत्त हैं कि उन्हें कहना है, 'दही ले लो' तो कहती हैं, 'श्याम ले लो।' यह प्रेम की पराकाष्ठा है, भक्ति की सर्वोच्चावस्था है, जहाँ भक्त और भगवान एक हो जाते है।

ऐसे महान भगवद्भक्त-कवि सूरदासजी 'खंजन नैन रूप-रस माते... नतरु अबहिं उड़ि जाते' गाते-गाते १६४० में भौतिक शरीर त्यागकर श्रीकृष्ण में लीन हो गये। ○○○

लक्ष्य

स्वामी ओजोमयानन्द

रामकृष्ण मठ, बेलुड़ मठ, हावड़ा

आचार्य द्रोणाचार्य ने वृक्ष पर एक नकली गीध पक्षी रखकर राजकुमारों से उस गीध पक्षी का सिर काटने को कहा। सर्वप्रथम उन्होंने युधिष्ठिर से धनुष-बाण लेकर लक्ष्य बींधने को कहते हुए पूछा – क्या तुम गीध को देख रहे हो? उत्तर – हाँ गुरुदेव। आचार्य – क्या तुम वृक्ष को, मुझको अथवा अपने भाइयों को भी देखते हो? उत्तर – हाँ, मैं गीध, वृक्ष, आपको तथा भाइयों को भी बारम्बार देख रहा हूँ । तब द्रोणाचार्य ने कहा, तुम लक्ष्य नहीं बींध सकते। तदनन्तर आचार्य ने दुर्योधन और अन्य सभी राजकुमारों से भी यही प्रश्न पूछा और उन सबने वैसा ही उत्तर दिया। आचार्य ने सबको अस्वीकार कर अन्त में जब यही प्रश्न अर्जुन से पूछा, तो उत्तर मिला –

शिरः पश्यामि भासस्य न गात्रमिति सोऽब्रवीत्।

(महाभारत/आदिपर्व/सम्भव पर्व १/१४३/७ ब)

अर्थात् मैं गीध का केवल सिर देख रहा हूँ, उसका शरीर नहीं। तब द्रोणाचार्य ने अर्जुन को तीर चलाने को कहा। अर्जुन ने बाण का संधान किया और गीध का मस्तक काट गिराया।

महाभारत की यह घटना हमें यह शिक्षा प्रदान करती है कि जिसका लक्ष्य जितना स्पष्ट होगा, वह उतनी ही सफलता के निकट होगा। अधिकांश लोग अपना लक्ष्य ही निर्धारित नहीं कर पाते। यह वैसी ही समस्या है, जैसे कोई रिक्शे में जाकर बैठ जाए और पूछने पर कहे कि उसे पता नहीं कि उसे कहाँ जाना है। लक्ष्यहीन व्यक्ति जीवन में कभी सफल नहीं होता। सफल वही हो सकता है, जिसका कोई लक्ष्य हो। आश्चर्य का विषय यह है कि मनुष्य सफल होने के लिये सदा भागे जा रहा है। इस भाग-दौड़ के चक्र में भागते-भागते एक दिन वह देखता है कि उसके बाल पक चुके हैं, धमनियाँ दुर्बल हो चुकी हैं, दाँत अपने-अपने स्थान रिक्त कर रहे हैं और तब वह सोचता है कि मैंने जीवन में क्या पाया? वास्तव में पाने को तब रह ही क्या जाता है, जब कुछ लक्ष्य ही नहीं था।

लक्ष्य का निर्धारण – जीवन में लक्ष्य निर्धारण करते समय हम द्वंद्व में पड़ जाते हैं कि किस पथ का चयन करें। कठोपनिषद में उल्लेख आता है – **श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतः** (१/२/२) – अर्थात् मनुष्य के जीवन में दो मार्ग आते हैं। एक श्रेय का अर्थात् जो श्रेष्ठ है और दूसरा प्रेय का अर्थात् जो प्रिय लगता है। श्रेय श्रेष्ठ मार्ग है। वह धर्म का सर्वकल्याणकारी और हमें उन्नत करने का मार्ग है। यह मार्ग हमारी मुक्ति का द्वार खोल देता है, क्योंकि धर्म ही मनुष्य जीवन की वास्तविक संपत्ति है।
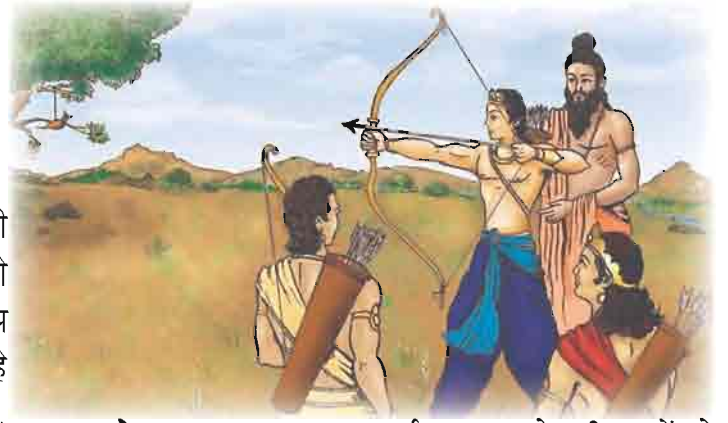
दूसरा मार्ग प्रिय है। यह स्वार्थ, अधर्म, भोग और पुण्य-क्षय का मार्ग है। इस मार्ग में बहुत शीघ्र ही अल्प सुख प्राप्त हो जाता है, इसलिये अधिकांश लोग इस पथ का स्वाभाविक रूप से चयन कर लेते हैं, पर जीवन के अन्त में उन्हें खेद ही होता है। श्रेय का पथ कठिन होता है, पर प्रेय का मार्ग सरल। गीता (१८.३७) में भगवान कहते हैं – **यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्** – आरम्भकाल में तो विष के तुल्य प्रतीत होता है, परन्तु परिणाम में अमृत तुल्य होता है। यही श्रेय है। **परिणामे विषमिव** (गीता १८.३८) – भोगकाल में अमृत तुल्य प्रतीत होता है, पर परिणाम विष के समान होता है। यही प्रेय है।

सफलता के रहस्य – सर्वप्रथम लक्ष्य का निर्धारण, फिर उसे पाने का निरन्तर प्रयास बहुत आवश्यक है। नहीं तो, अधिकांश लोग लक्ष्य बनाते हैं, उसकी प्राप्ति की योजनाएँ बनाते हैं, किन्तु उसमें निरन्तर प्रयास न होने के कारण कुछ दिनों बाद जैसे थे वैसे ही हो जाते हैं।

लक्ष्य क्या है या क्या होना चाहिए उसे निश्चित कर लेना चाहिये। उसके बाद एकमात्र लक्ष्य प्राप्ति का प्रयास करना चाहिये। वस्तुत: लक्ष्य के प्रति अटलता ही सफलता का रहस्य है। लक्ष्य के प्रति दृढ़ता वैसे ही आवश्यक है, जैसे झरने के नीचे चट्टान, जो आघात-पर-आघात सहकर भी स्थिर रहता है, जैसे आँधियों के आने पर वृक्ष की जड़ें अंतिम समय तक संघर्ष करती रहती हैं।

स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं, ''एक विचार लो, उसी विचार को अपना जीवन बनाओ, उसी का चिन्तन करो,

उसी का स्वप्न देखो और उसी में जीवन बिताओ। तुम्हारा मस्तिष्क, स्नायु, शरीर के सर्वाङ्ग उसी विचार से पूर्ण रहें। दूसरे, सारे विचार छोड़ दो। यही सफल होने का उपाय है, और इसी उपाय से बड़े-बड़े धर्मवीरों की उत्पत्ति हुई है।'' (वि.सा.१/९०) लक्ष्य का बारम्बार स्मरण लक्ष्य की कुंजी है। उदाहरण हेतु यह घटना उल्लेखनीय है।

एक नवयुवक घर-परिवार छोड़कर ईश्वरप्राप्ति के लिये आश्रम में आया। प्रारम्भ में उसे प्रबल वैराग्य था। दिन-रात वह आश्रम के कामों में और साधन-भजन में ही व्यतीत करता था। कुछ दिन बीतने पर उसे लगा कि उसका वैराग्य कुछ कम हो गया है। उसकी साधना भी मशीन की तरह होती जा रही है। चिन्तित होकर उसने आश्रम के एक वरिष्ठ संन्यासी को अपनी बात बताई। उन संन्यासी ने उसे परामर्श दिया, वह प्रतिदिन सोने से पहले और उठने के बाद स्मरण करे कि वह यहाँ क्यों आया था। वास्तव में हमें यदि अपना लक्ष्य स्मरण रहे, तो हमारा प्रयास भी उस ओर होता रहेगा, किन्तु यदि हम लक्ष्य ही भूल जायें, तो इस जगत में खो जायेंगे, इसमें कोई संदेह नहीं है।''

श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं, ''जो जिसकी चिन्ता करता है, उसे उसी की सत्ता मिलती है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हम जिससे प्रेम करते हैं, उसका चिन्तन हमें स्वाभाविक रूप से होने लगता है, उसके लिये अलग से कोई प्रयास नहीं करना पड़ता। अत: जिन्हें अपने लक्ष्य से प्रेम हो जाये, उनके लिए अपने लक्ष्य का चिन्तन और उसकी प्राप्ति सहज हो जायेगी। श्रीरामकृष्ण देव के उपरोक्त कथन को तुलसीदास जी इस प्रकार लिखते हैं –

जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू।

सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू।। (रामचरितमानस १/२५८/३)

अर्थात् जिसका जिस पर सच्चा स्नेह होता है, वह उसे मिलता ही है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

असफलता के कारण – मात्र लक्ष्य बना लेने से समस्याओं का समाधान नहीं हो जाता, जब तक कि उस पथ पर आनेवाले झंझावातों से लड़कर हम अग्रसर न होते रहें। अधिकांश लोग मार्ग में चलते प्रलोभनों के शिकार हो जाते हैं और लक्ष्य छूट जाता है। यम भी नचिकेता के समक्ष कुछ ऐसे ही प्रलोभन रखते हैं – **ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्वान् कामाँश्छन्दतः प्रार्थयस्व** (कठोपनिषद १.१.२५) – अर्थात् 'जो-जो भोग मनुष्य लोक में दुर्लभ हैं, उन सम्पूर्ण भोगों को इच्छानुसार माँग लो।' किन्तु नचिकेता किसी भी प्रलोभन का शिकार नहीं होता, वह ब्रह्मविद्या के लिए ही दृढ़ रहता है।

श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं, ''बगीचे में आम खाने आया हूँ, कितने वृक्ष हैं, कितनी शाखाएँ हैं, कितने पत्ते हैं, बैठे-बैठे ये सब हिसाब करने की मुझे क्या आवश्यकता ! मैं आम खाता हूँ, वृक्ष और पत्तों के हिसाब की मुझे कोई आवश्यकता नहीं है।'' (श्रीरामकृष्ण-कथामृत, १४ दिसम्बर, १८८२) परन्तु मनुष्य का स्वभाव इतना विचित्र है कि वह अपनी दृष्टि चारों ओर बिखेर कर शक्ति का अपव्यय कर देता है। जो शक्ति लक्ष्य की ओर लगानी चाहिये, वह अन्य स्थानों में लग गई, इससे वह वह लक्ष्य से दूर हो जाता है।

हमारी असफलता का एक कारण हमारा आलस्य भी है। जिसके कारण हम लक्ष्य के प्रति निष्ठावान होकर प्रयास नहीं करते। बड़े लक्ष्य निर्धारण करने और बड़ी योजनाएँ बनाने से कभी सफलता नहीं मिल सकती, जब तक कि कोई आलस्य छोड़ उसका क्रियान्वयन न करे।

लक्ष्य से पलायन का मार्ग कभी सफलता की ओर नहीं जाता। सफलता और असफलता के द्वन्द्व से अथवा मार्ग में आने वाली बाधाओं से विचलित होकर यदि हम पलायन करें, तो कभी भी लक्ष्य तक नहीं पहुँच पायेंगे। यदि हम इतिहास का अनुगमन करें, तो पायेंगे कि जिन्होंने अपनी स्वर्णिम कीर्ति अंकित की है, वे विषम परिस्थितियों में भी अपने लक्ष्य से डीगे नहीं, ऐसे ही व्यक्तित्व के धनी लोग अपने लक्ष्य का आलिंगन कर सके।

शंकराचार्य जी का यह श्लोक लक्ष्य च्युत होने का परिणाम इंगित करता है —

लक्ष्यच्युतं चेद्यदि चित्तमीषद्

बहिर्मुखं सन्निपतेत् ततस्ततः।

प्रमादतः प्रच्युतकेलिकन्दुकः

सोपानपंक्तौ पतितो यथा तथा।।

(विवेकचूडामणि ३२६)

अर्थात् जैसे असावधानतावश सीढ़ियों पर गिरी हुई खेल की गेंद एक सीढ़ी से दूसरी सीढ़ी पर गिरती हुई नीचे चली जाती है, वैसे ही यदि चित्त अपने लक्ष्य से हटकर थोड़ा-सा भी बहिर्मुख हो जाता है, तो क्रमश: नीचे की ओर ही गिरता जाता है।

विकल्प बाधक है – विकल्प व्यक्ति को कमजोर बनाता है। अधिकांशत: लोग अपने लक्ष्य के मार्गों में आने वाले पड़ावों को विकल्प रख लेते हैं। यदि वह न मिला, तो यह सही। इस प्रकार के विकल्प हमारे लक्ष्य-प्राप्ति के मार्ग में सहायक नहीं वरन् बाधक ही सिद्ध होते हैं। इससे सम्बन्धित एक सुंदर कहानी है –

एक टापू में एक छोटा राज्य था। वह राज्य भले ही छोटा था, किन्तु बहुत सुन्दर था, इसलिये उस राज्य का नाम सुंदर देश था। उस टापू से दूर एक बड़ा राज्य था, जो 'शक्ति देश' के नाम से परिचित था। एक बार शक्ति देश के राजा के मन में सुन्दर देश पर चढ़ाई करने की इच्छा हुई। वह अपनी विशाल सेना लेकर उस जलाशय के तट पर आ पहुँचा। प्रात:काल ही वह चढ़ाई करने को प्रस्तुत था, पर यह गुप्त समाचार सुंदर देश के राजा तक पहुँच गया । राजा ने सब कुछ जानकर अपने सभी सैनिकों को रात्रि में ही उस छावनी की ओर प्रस्थान करने का आदेश दिया। समस्त सेना के उस पार पहुँच जाने पर राजा ने नौकाओं को आग लगाने का आदेश दिया। नौकाओं के जल जाने पर राजा ने रात्रि में ही आक्रमण करने का आदेश देते हुए कहा कि सैनिकों अब हमारे वापस जाने का मार्ग बंद है, अब हम या तो युद्ध करके विजयी होंगे या वीरगति को प्राप्त होंगे। हमारे पास अब कोई विकल्प नहीं है। उन्होंने युद्ध कर शक्ति देश की सेना को हरा दिया। इस कहानी तात्पर्य है कि जब हमारे समक्ष कोई विकल्प न हो, तो हमारी शक्ति बढ़ जाती है, हमारी एकाग्रता बढ़ जाती है, हम युद्धस्तर पर उस कार्य को सम्पन्न करने का प्रयास करते हैं। विकल्प रखने वालों की शक्ति विभिन्न भागों में बँट जाती है और वे सफल नहीं हो पाते, वैसे ही जैसे दो नावों में पैर रखने वाले अक्सर डूब जाते हैं।

लक्ष्य के स्तर – मानव जीवन का प्रथम स्तर जीविकोपार्जन से प्रारम्भ होता है। इस स्तर में मनुष्य, रोटी, कपड़ा और मकान तक ही सीमित रहता है। भोग ही उसके लिए सब कुछ होता है। वह अपने इन्द्रियों से सुख पाना चाहता है। उसकी कामना ही उसका लक्ष्य होती है। कभी-कभी इस स्तर का मनुष्य भोग से विरक्त होकर उच्च जगत में प्रवेश कर सकता है, परन्तु इसकी संख्या बहुत कम ही होती है।

दूसरे स्तर का व्यक्ति भोजन, वस्त्र, आवास और इन्द्रिय सुखों से ऊपर उठकर मान-यश की आकांक्षा से कार्य करता है। इसके लिए वह बड़े-बड़े दान देता है। यज्ञ, हवन और समाज सेवा का कार्य करता है। इसके लिए वह इन्द्रिय सुख को छोड़ देता है। मान-सम्मान के लिए वह बड़े से बड़ा त्याग कर सकता है। इस स्तर के मनुष्य का मन पहले की अपेक्षा उच्च स्तर में रहता है और मान-यश की तृप्ति होने पर या उसके असार बोध होने पर वह उच्च जगत में प्रवेश कर सकता है।

इन दोनों स्तरों से ऊपर उठने पर व्यक्ति आध्यात्मिक जगत में प्रवेश करता है। जीवन का अनुभव उसे इन दोनों स्तरों से वैराग्य प्रदान करता है और वह आध्यात्मिकता की सीढ़ी चढ़ने लगता है।

उसका लक्ष्य एकमात्र ईश्वर होता है। क्योंकि उसे बोध हो चुका है कि धन, मान, सम्मान इस भव-संसार से कभी मुक्त नहीं कर सकते। इस चक्र को काटने के लिये वह ईश्वराभिमुखी हो जाता है।

मानव जीवन का लक्ष्य क्या है?

श्रीरामकृष्ण देव अपने पास आनेवाले भक्तों से जीवन-कर्तव्य के बारे में प्रश्न पूछते थे। एक बार यही प्रश्न उन्होंने बंकिमचंद्र से भी पूछा। उत्तर में बंकिमजी ने कहा – मनुष्य का कर्तव्य आहार, निद्रा और मैथुन है। तब श्रीरामकृष्ण देव ने विरक्त होकर उनसे कहा – अरे ! तुम बड़ी ओछी बात करते हो ! तुम दिन-रात जो करते हो, वही तुम्हारे मुख से निकल रहा है। लोग जो कुछ खाते हैं, उसी की डकार करते हैं। मूली खाने पर मूली की डकार आती है।

...कामिनी-कांचन में दिन रात रहते हो और वही बात मुख से निकल रही है।... यदि ईश्वर का चिन्तन न हो, यदि विवेक-वैराग्य न हो, तो केवल विद्वत्ता रहने से क्या होगा? यदि कामिनी-कांचन में मन रहे, तो केवल पंडिताई से क्या होगा?'' (श्रीरामकृष्णवचनामृत, द्वितीय भाग, पृ-६०९)

जब मानव-जीवन का लक्ष्य न तो कामिनी-कांचन है और न ही विद्वत्ता, तो वास्तव में मानव-जीवन का लक्ष्य क्या है? इसी सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं – ''इन्द्रिय सुख मानव-जीवन का लक्ष्य नहीं है, ज्ञान ही सकल प्राणियों का लक्ष्य है। हम देखते हैं कि एक पशु जितना आनन्द अपनी इन्द्रियों से पाता है, उससे अधिक आनन्द मनुष्य अपनी बुद्धि से अनुभव करता है। साथ ही हम यह भी देखते हैं कि मनुष्य आध्यात्मिक प्रकृति का बौद्धिक प्रकृति से भी अधिक आनन्द प्राप्त करता है । इसीलिए मनुष्य का परम ज्ञान आध्यात्मिक ज्ञान ही माना जा सकता है। इस ज्ञान के होते ही परमानन्द की प्राप्ति होती है। (वि.सा.४/१९०)

लक्ष्य-वेधन – जब मनुष्य के जीवन में यह प्रश्न उपस्थित हो कि मानव-जीवन का लक्ष्य क्या है, तभी उसके जीवन की आध्यात्मिक यात्रा प्रारम्भ होती है। वह स्वयं को और अपने को जानना चाहता है। यही प्रश्न उसके लिए आध्यात्मिक जगत का द्वार खोल देता है। विभिन्न कालों में विभिन्न प्रकार के साधकों ने विभिन्न प्रकार के पथों का अवलम्बन किया और वे सफल हुए। हम भी ऐसे किसी पथ का अवलम्बन कर अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हो सकते हैं। हम अपनी रुचि के अनुसार ज्ञान, भक्ति, कर्म, योग अथवा इन सबकी समन्वित साधना से अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं।

हे मनुष्य ! वेद यह उद्‌घोष करते हैं –

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्।।

(मुण्डक उप.२/२/४)

– परमेश्वर का वाचक ओंकार ही मानो धनुष है, यह जीवात्मा ही बाण है और परब्रह्म परमेश्वर ही उसका लक्ष्य है। तत्परता से उनकी उपासना करने वाले प्रमाद रहित साधक द्वारा ही वह लक्ष्य बेधा जा सकता है, इसलिए हे सौम्य ! तुझे पूर्वोक्त रूप से उस लक्ष्य को बेधकर बाण की ही भाँति तन्मय हो जाना चाहिए। ○○○

मुझे भी वही चाहिए

स्वामी वीरेश्वरानन्द

स्वामी वीरेश्वरानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के दशम संघाध्यक्ष थे। पूज्यपाद महाराज अनेकों बार चेरापुंजी आश्रम गए थे। वहाँ के आदिवासी बच्चों से महाराज का विशेष स्नेह था और बहुधा वे अपने कक्ष में बच्चों से घिरे रहते थे। महाराज उनकी स्थानीय भाषा नहीं जानते थे और बच्चे भी अधिक अंग्रेजी बोल नहीं पाते थे। किन्तु बच्चों के साथ वे इस प्रकार मनोरंजन करते कि बच्चों की जोरों की हँसी की आवाज आसपास सबको सुनाई देती थी।

पूज्यपाद महाराज एकबार मन्त्रदीक्षा प्रदान करने हेतु चेरापुंजी आश्रम आए हुए थे। महाराज ने वहाँ बहुत-से आदिवासियों को भी मंत्रदीक्षा प्रदान की। एकदिन सुबह एक छोटे-से बच्चे ने आश्रम के साधुओं के पास आकर अपनी दीक्षा की इच्छा व्यक्त की। उसकी उम्र आठ साल से भी कम होगी। दीक्षा पाने की दृष्टि से उसकी आयु बहुत कम थी। आश्रम के अध्यक्ष महाराज ने उससे कहा कि जब सभी लोग पंक्ति में खड़े होकर संघाध्यक्ष महाराज को प्रणाम करेंगे, तब वह अपनी दीक्षा की बात महाराज से करे। इस प्रकार अवसर मिलते ही बालक ने महाराज से अपनी दीक्षा प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त की।

महाराज ने मधुर हास्य के साथ बच्चे से कहा, 'तुम अभी छोटे हो, इसलिए मैं तुम्हे आधा मंत्र दूँगा।' यह सुनकर बालक रुँधे हुए गले से बोला, 'क्या आप मुझे पूरा मंत्र नहीं देंगे?' पूज्यपाद महाराज ने आश्रम के अध्यक्ष महाराज को बुलाकर कहा कि वे उस बालक को सुबह १० बजे आकर उनसे मिलने के लिए कहें।

अगले दिन वह बालक तो आया, किन्तु एक और समस्या खड़ी हो गई। उस बालक का एक छोटा चचेरा भाई था। उसने भी रोना-धोना शुरू कर दिया कि उसको भी वही चीज चाहिए, जो उसके बड़े भाई को दी जा रही है। उसे यह नहीं मालूम था कि वह क्या चीज है। किन्तु बिना चीज लिए वह मानने को तैयार नहीं था। वहाँ सभी लोग दुविधा में पड़ गए। यह बात संक्षेप में पूजनीय महाराज को बताई गई। महाराज ने भी सहर्ष स्वीकृति दी और दोनों छोटे बच्चे दीक्षा प्राप्त कर धन्य हो गए। ○○○

आध्यात्मिक जिज्ञासा (१६)

स्वामी भूतेशानन्द

– फिर भी हमलोग एक बार में एक ही दृष्टिकोण से देख सकते हैं। एक साथ दो दृष्टिकोणों से नहीं देख सकते हैं। यही समस्या है।

महाराज – जादूगर ही सत्य है। संसार सत्य है, यदि वह ब्रह्म हो तो। यदिदं जगत् ब्रह्मेव...। ब्रह्म अपरिणामी और संसार परिणामी कैसे होगा? इसके उत्तर में कहते हैं – संसार ब्रह्म पर आरोपित है। जिस पर संसार आरोपित है, उसका कभी परिवर्तन नहीं होता। इसलिए वह ब्रह्म आरोप का अधिष्ठान हो सकता है, किन्तु उससे उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता।

– ठाकुर दोनों को ही सत्य कह रहे हैं। हम लोगों की समस्या यह है कि हम लोग किसका अनुसरण करेंगे?

महाराज – जो तुम्हारे लिये अनुकूल होगा, उसका अनुसरण करना।

– सिद्धान्त रूप में किसको स्वीकार करेंगे?

महाराज – यदि तुम अद्वैतवादी हो, तो अद्वैत के सिद्धान्त को मानना।

प्रश्न – महाराज ! ठाकुर कहते थे, शक्ति का ही अवतार होता है। शक्ति के अवतार का क्या अर्थ है?

महाराज – भगवान शक्तिस्वरूप हैं। सृष्टि, स्थिति और लय शक्ति के द्वारा होता है। जब वे भगवान हैं, तब वे सृष्टि, स्थिति लय कर रहे हैं, उनका ही अवतार होता है। जो निर्गुण ब्रह्म है, उसका अवतार नहीं होता। जो सृष्टि, स्थिति और लय कर रहे हैं, उसी शक्ति या शक्तिशाली को ही शक्ति या अवतार कहते हैं। उन्हीं का अवतार होता है।

– वैष्णवों की धारणा है कि अवतार विष्णु से होता है। अवतार कहाँ से आते हैं?

महाराज - सभी अवतार विष्णु से आते हैं। क्यों? क्योंकि विष्णु रक्षक हैं, ईश्वर के स्थितिस्वरूप हैं। स्थिति (रक्षण) के लिये ही सभी अवतार आते हैं, इसलिए सभी विष्णु के अवतार हैं।

– महाराज रक्षण करने के लिए नहीं , संहार करने भी तो आते हैं।

महाराज – रक्षा तो फिर ऐसे करनी होगी। वे ही -

विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने।
तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये।।

(श्रीदुर्गासप्तशती १.७६)

सृष्टि के समय वे सृष्टि का कारण होकर आती हैं। वे जगन्मयी हैं। वे सृष्टि में भी हैं, रक्षण में भी हैं और संहार में भी हैं। माँ कभी दो-चार थप्पड़ दे देती हैं, वह तो रक्षा के लिये ही देती हैं।

– ठाकुर ने कहा है – साकार भी सत्य है और निराकार भी सत्य है। इस बात को हम समझ नहीं पा रहे हैं।

महाराज – ठाकुर कहते थे, भगवान को सीमित नहीं करना चाहिये। वे यह हो सकते हैं और यह नहीं हो सकते, ऐसा नहीं सोचना चाहिए। वे सब कुछ हो सकते हैं। क्योंकि वे साकार भी हैं, निराकार भी हैं और साकार-निराकार के परे भी हैं।

– वे साकार-निराकार के अतीत क्या हो सकते हैं?

महाराज – जिसे साकार भी नहीं कहा जा सकता और निराकार भी नहीं कहा जा सकता।

– क्या ऐसी वस्तु बुद्धिगम्य है?

महाराज – ऐसी वस्तु बुद्धि से समझी जाती है, किन्तु प्रत्यक्ष अनुमान, इन सबसे नहीं समझी जाती।

– क्या वे एक समय में ही साकार और निराकार दोनों हैं?

महाराज – एक ही समय क्या ! क्या क्षण-क्षण में रूप बदल रहे हैं? जब उनको जल के रूप में देख रहे हैं, तभी उनको बर्फ के रूप में भी देख रहे हैं।

– ठाकुर के बहरूपिया की कहानी में उल्लेख है, एक गिरगिट कुछ देर में रंग बदलता रहता है।

शेष भाग पृष्ठ १७३ पर

नैना देवी शक्तिपीठ

तारादत्त जोशी, नैनीताल

आध्यात्मिक पर्यटन नगरी – नैनीताल

भारत भूमि के उत्तर में स्थित उत्तराखण्ड सौन्दर्य से परिपूर्ण प्रदेश है। इस भूमि में कहीं पर गगन चुम्बी हिमशिखर हैं, तो कहीं पर निर्विकार रूप से खड़ी निर्जन नग्न चट्टानें। कहीं कस्तूरी मृगों से विहार करते हुए बहु जातियों तरुओं, लताओं और औषधियों से परिपूर्ण वनप्रान्त हैं, तो कहीं सुन्दर फूलों की घाटियाँ और मीलों लम्बे घास के मैदान । कहीं शीतल, निर्मल जल से परिपूर्ण जीवन राग सुनाती हुई नदियाँ हैं, तो कहीं सरोवर। पौराणिक काल से ही यह भूमि ऋषि-मुनियों की तपस्थली रही है। ऐसी मान्यता है कि महर्षि व्यास ने अठारह पुराणों की रचना बद्रीनाथ के समीप व्यास गुफा में की थी। आदिगुरु शंकराचार्य से लेकर स्वामी विवेकानन्द तक सभी महापुरुषों ने इस भूमि का भ्रमण किया और यहाँ की शान्त वादियों में साधना की है।

जावालिगलिवाश्चैव मार्कण्डयो महामना।
च्यवनश्च महाभागः भृगुपुत्रा अंगिरामनुः
एते चान्ये बहवो मुनयः तप्तुमान्विताश्री।।

(स्कन्द पुराण के.ख.)

देवभूमि उत्तराखण्ड देवाधिदेव महादेव की क्रीड़ा स्थली है। यहाँ के कण-कण में भगवान शिव का वास है और पग-पग में शिव-पार्वती की गाथा। आदिशक्ति जगदम्बा यहाँ के मानस में माँ के साथ-साथ पुत्री के रूप में प्रतिष्ठित हैं। पुत्री के रूप में जगदम्बा को विभिन्न प्रकार से स्थानीय प्रतिमानों से मनाकर आदिदेव महादेव के कैलाश में पहुँचाने की परम्परा 'नन्दा-राज-जात' के रूप में आज भी विद्यमान है, जो १२ वर्ष बाद सम्पन्न होती है और हिमालयी कुम्भ के नाम से जगत-विख्यात है। माँ जगदम्बा की छत्तोली जब जातमार्ग में पड़ने वाले गाँवों में रात्रि विश्राम के बाद आगे के मार्ग में अग्रसर होती है, तो गाँव की माताओं द्वारा जगदम्बा भवानी को ऐसे अश्रुपूरित नेत्रों से विदा किया जाता है, जैसे आज ही उनकी पुत्री प्रथम बार ससुराल जा रही हो। स्कन्दपुराण में भी उत्तराखण्ड को भगवान शिव की क्रीड़ास्थली बताया गया है –

केदारमण्डलं यावत्तावदत्तः पुरं मतम्
श्रीशिवस्य महाभाग क्रीड़ास्थानमिदं परम्।

(स्कन्द पुराण के.ख. २०५-११)

उत्तराखण्ड के कुमाऊँ मण्डल में देवदार और बाँज वृक्षों से आच्छादित पर्वत चोटियों की उपत्यका में सरोवर नगरी के नाम से विख्यात आध्यात्मिक एवं पर्यटन नगरी नैनीताल स्थित है। पुराणों में यह नगरी सरोवर नगरी और नैनी सरोवर नाम से विख्यात है। नैनी सरोवर के अतिरिक्त इसे 'त्रिऋषि सरोवर' भी कहते हैं। अगस्त्य, पुलस्त्य और पुलह ऋषियों की तपस्थली होने के कारण इसे 'त्रिऋषि सरोवर' भी कहा जाता है।

शक्तिपीठ

स्कन्दपुराण में एक कथा है। दक्ष प्रजापति ने एक यज्ञ किया। इस यज्ञ में उन्होंने समस्त देवताओं, ऋषि-मुनियों, यक्षों, गन्धर्वों एवं अपनी सभी पुत्रियों को आमन्त्रित किया, किन्तु विरोध के कारण सती और महादेव को यज्ञ में आमन्त्रित नहीं किया। जब देवताओं के समूह विमानों से यज्ञ में जाने लगे, तो सतीजी ने कौतूहल बस शिवजी से पूछा, आज देवगण अपनी पत्नियों के साथ कहाँ जा रहे हैं? महादेव ने बताया, उनके पिता दक्ष यज्ञ कर रहे हैं। ये देवता उसी यज्ञ में जा रहे हैं। यह सुनकर सतीजी के मन में यज्ञ में जाने की प्रबल इच्छा हुई। वे शिवजी से अनुमति माँगने लगीं । महादेव ने सती को समझाते हुए कहा – ऐश्वर्य-मदमत्त प्रबल अहंकारियों के यहाँ जो बिना बुलाये जाता है, वह हँसी का पात्र बनता है, उसका अपमान होता है –

ऐश्वर्यमदयुक्तानामहंकार परात्मनाम्।
यदिगच्छेदनाहूतो हास्यतां याति सत्वरम्।।
मुखं विवृण्यते चैव दृष्टवातं गृहमागतम्।
यस्तुगच्छेदनाहूतो जायते माननाशनम्।।

(स्क.पु.के.ख. १०३/२९-३०)

किन्तु सती के मन में अपने पिता का गहरा संस्कार था। वे महादेव को विभिन्न तर्क देने लगीं और यज्ञ में जाने का हठ करने लगीं।

कहि देखा हर जतन प्रभु, रहहि न दच्छ कुमारि।

(रा.च.मा. १/६२)

तब महादेव ने अपने गणों के साथ सती को यज्ञ में भेज दिया, किन्तु पिता के यहाँ उनका सत्कार नहीं हुआ। दक्ष के भय से माता भी सती से प्रेम से नहीं मिलीं। बहिनें भी उलाहना भरी मुस्कुराहट से मिलीं। शिवजी से ईर्ष्यावशात् पिता ने तो पुत्री से कुशल तक नहीं पूछी –

दक्ष न कछु पूछी कुशलाता।

(रा.च.मा.१/६२-३)

इस प्रकार अपमान से व्यथित सती को अपनी भूल का आभास हुआ। सती ने यज्ञभूमि में पहुँचकर देखा कि वहाँ सभी देवताओं का यज्ञभाग रखा हुआ है, किन्तु महादेव का नहीं। इस पर पुत्री ने पिता से यज्ञभाग न रखने का कारण पूछा, तो दक्ष कटु शब्दों में महादेव की निन्दा करने लगे। पिता के द्वारा भरी सभा में पति के अपमान से लज्जित सती क्रोधित हो गईं। वे यज्ञ-सभा में सक्रोध बोलीं –

जगदातमा महेसु पुरारी।

जगत जनक सबके हितकारी।।

पिता मंदमति निंदत तेही।

दच्छ शुक्र सम्भव यह देही।।

तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतु।

उर धरि चन्द्रमौलि वृषकेतु।। (रा.च.मा.१/६२-५-८)

ऐसा कहकर सती सहसा यज्ञ कुण्ड की प्रज्वलित अग्नि में कूद गयीं। सती के यज्ञकुण्ड में गिरने से यज्ञ भूमि में हाहाकार मच गया –

पपात सहसा वह्नौ ज्वलिते धातृ पुत्रक।

हाहाकाररवश्चासीत्सर्वेषां देव राक्षसाम्।

(स्कन्द पुराण के.ख. १०३-५४)

सती के यज्ञकुण्ड में गिरने का समाचार जब शिवगणों द्वारा शिवजी को मिला, तो वे व्याकुल और क्रोधित होकर यज्ञभूमि में अपने गणों सहित पहुँच गये। उनके द्वारा उत्पन्न पुरुष यज्ञ को विध्वंस करने लगा। स्वयं महादेव सती के अधजले शरीर को लेकर तीनों लोकों में विचरण करने लगे। महादेव के रौद्र रूप को देखकर भगवान विष्णु ने सोचा कि यदि शीघ्र ही महादेव का क्रोध शान्त नहीं हुआ, तो वे सृष्टि का विनाश कर देंगे। अत: श्रीहरि ने महादेव को शान्त करने के लिए सती के शरीर को सुदर्शन चक्र से कई खण्डों में विभाजित कर दिया। भारत भूमि में जहाँ-जहाँ सती के अंग गिरे, वहाँ-वहाँ माता जगदम्बा अपने अंगों के नाम से प्रतिष्ठित होकर जगत का कल्याण करने लगीं। उन स्थलों को शक्तिपीठ कहा जाता है।

ऐसी मान्यता है कि सती के शरीर से नेत्र इस सरोवर के पास गिरे। नेत्र के कारण ही माँ जगदम्बा यहाँ पर नयना देवी (नैना देवी) के नाम से प्रतिष्ठित होकर अपने भक्तों का कल्याण कर रही हैं। देवी के नाम से ही सरोवर नैनी सरोवर (नैनीताल) नाम से विख्यात है। वर्तमान में सरोवर के उत्तरी छोर (मल्ली ताल) में माता का मन्दिर है। मन्दिर के पास ही श्री गुरुद्वारा है। सरोवर का दक्षिणी छोर तल्ली ताल नाम से जाना जाता है।

नैनीताल ऐतिहासिक परिचय

ऐतिहासिक दृष्टि से विश्व को नैनीताल से परिचित कराने का श्रेय पी. बैरन नाम के इंग्लैण्ड निवासी व्यक्ति को है। बैरन १८४१ में नैनीताल पहुँचे थे। १८४१ में नरसिंह नाम के व्यक्ति इस पूरे क्षेत्र के धोकदार थे। मोतीराम शाह जी नैनीताल में रहते थे। मोतीराम शाह जी को नैनीताल का प्रथम निवासी माना जाता है। शाहजी का निवास वर्तमान में 'पिलग्रिम लाज' नाम से प्रसिद्ध है।

पी. बैरन ने नैनीताल के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी १८४१ में बंगाल से प्रकाशित समाचार पत्र 'बगांल गजट' के द्वारा भारत और विश्व के लोगों को परिचित कराया था। इसीलिए बैरन को ही नैनीताल का खोजकर्ता माना जाता है। बैरन के वृत्तान्त के अनुसार १८४१ ई. में माँ नैना देवी का मन्दिर तल्ली ताल में स्थित था और मोतीराम शाह जी द्वारा मन्दिर की देख-रेख और पूजा अर्चना की जाती थी।

१८४४ में नैनीताल आने के कुछ समय बाद बैरन ने नैनीताल को अपने नाम पर करवा लिया और इसके बदले

धोकदार नरसिंह को पाँच सौ रुपये पुरस्कार और पटवारी का पद दिया। इसी वर्ष मन्दिर को मूल स्थान से हटाकर सरोवर के लगभग मध्य में वर्तमान बोट हाउस क्लब में स्थापित किया गया। मन्दिर की देख-रेख का कार्य मोतीराम शाह जी द्वारा किया जाता था।

१८८० में नैनीताल में भंयकर भू-स्खलन हुआ और मन्दिर भू-स्खलन से दब गया। १८८३ में मोतीराम शाह जी के पुत्र श्री अमरनाथ शाह जी को स्वप्न में माता ने दर्शन देकर मलवे में दबी मूर्ति को निकालकर, वर्तमान स्थान में मन्दिर स्थापित करने हेतु निर्देश दिया। स्वप्न में प्राप्त निर्देशानुसार १८८३ की ज्येष्ठ मास नवमी तिथि को वर्तमान स्थान पर मूर्ति की स्थापना की गयी। अमरनाथ शाह जी के बाद उदयनाथ साह जी द्वारा मन्दिर निर्माण के कार्य को आगे बढ़ाया गया। उदयनाथ शाह के बाद उनके पुत्र राजेन्द्र शाह ने मन्दिर कार्य को आगे बढ़ाया।

राजेन्द्र शाह जी द्वारा २९ जुलाई, १९८४ को मन्दिर की देख-रेख एवं निर्माण कार्य हेतु अपने पिता और दादा के नाम से ''अमर-उदय ट्रस्ट'' की स्थापना की गयी। २९ जुलाई, १९८४ से मन्दिर निर्माण, स्वच्छता, सौन्दर्यीकरण का कार्य इसी ट्रस्ट द्वारा किया जा रहा है।

मन्दिर की स्थापना और रख-रखाव में मोतीराम शाह जी के परिवार का महत्त्वपूर्ण स्थान है। साथ ही नगरपालिका एवं झील विकास प्राधिकरण भी सहयोग करता रहता है।

सरोवर के एक किनारे दायीं ओर की सड़क को माल रोड कहते हैं। दूसरे किनारे की सड़क ठण्डी सड़क के नाम से जानी जाती है। इस ठण्डी सड़क पर विशाल प्रस्तर में माता जगदम्बा की कण्ठ से ऊपर की स्वत: बनी मूर्ति है, जो पाषाणदेवी के नाम से विख्यात है। माँ पाषाणदेवी के दरबार से कोई भी व्यक्ति निराश नहीं लौटता। ऐसी मान्यता है कि माँ की प्रतिमा वाले शिलाखण्ड से रिसते जल को न बोल पाने वाले बच्चों को पिलाने से बच्चे मुक्त कंठ से बोलने लगते हैं।

पर्यटन की दृष्टि से भी यह सरोवर नगरी प्रकृति प्रेमियों व पर्यटकों को बरबस अपनी ओर आकर्षित करती है। झील के तरंगित जल के तैरती बतखों के साथ नौका-विहार के आनन्द का वर्णन नहीं किया जा सकता। संध्या के बाद रोशनी से टिमटिमाते नैनीताल की परछाई जब ताल में बिम्बित होती है तो ऐसा प्रतीत होता है कि समूचा नगर ध्यानस्थ होकर माँ जगदम्बा के चरणों में समर्पित हो गया है। चीना पीक, किलवरी, लड़ियाकाँठा, कैमल्स बैक, स्नोव्यू, हनुमानगड़ी, तथा नक्षत्र वेधशाला नैनीताल के आसपास के प्रमुख दर्शनीय स्थल हैं।

नैनी सरोवर के अतिरिक्त नैनीताल के आसपास आठ और सरोवर हैं, जो आध्यात्मिक व पर्यटन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। इन सरोवरों के नाम श्रीरामताल, लक्ष्मण ताल, सीता ताल, नलदमयन्ती ताल, भीमताल, नौकुचिया ताल, लोहाखामताल, तथा खुर्पाताल है। लोहाखामताल के अतिरिक्त शेष सभी सरोवर २५ किमी. की परिधि में हैं।

इन सभी सरोवरों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में पौराणिक और आध्यात्मिक जनश्रुतियाँ प्रसिद्ध हैं। सरोवरों के अतिरिक्त आध्यात्मिक दृष्टि से गोलू देवता मन्दिर घोड़ाखाल, कैंची धाम कैंची, श्री १०८ सोमवारी बाबा आश्रम पदमपुरी, पायलट बाबा आश्रम, हैड़ाखान बाबा आश्रम भी पर्यटन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। ○○○

पृष्ठ १७० का शेष भाग

महाराज – उसे हमलोग देख रहे हैं, इसलिये। जब हमलोग अपनी दृष्टि से उसे लाल देख रहे हैं, तब नीला नहीं देख रहे हैं, जब नीला देख रहे हैं, तब पीला नहीं देख रहे हैं। किन्तु जहाँ लाल है, वहीं नीला है, वहीं पीला है, सब कुछ सूक्ष्म रूप में वहाँ है।

– तो क्या एक ही व्यक्ति के लिये वे एक साथ साकार और निराकार दोनों हैं?

महाराज – उनकी (ईश्वर की) बात हो रही है, व्यक्ति, की बात नहीं हो रही है। ठाकुर उनकी बात – ईश्वर की बात कह रहे हैं। कोई उन्हें साकार देखता है, कोई निराकार देखता है।

– तब जो देख रहा है, वह एक साथ दोनों रूपों में देख सकता है या नहीं?

महाराज – एक व्यक्ति की दृष्टि में नहीं हो रहा है, भिन्न-भिन्न लोगों की दृष्टि में हो रहा है। एक ही पल में एक ही समय में सृष्टि, स्थिति और प्रलय हो रहा है। यह विभिन्न समय में नहीं हो रहा है। विभिन्न द्रष्टा उसे देख रहे हैं।

– किसी एक व्यक्ति की दृष्टि में तो नहीं हो रहा है?

महाराज – एक व्यक्ति सृष्टि, स्थिति और लय कैसे देखेगा? यह तो नहीं हो सकता। **(क्रमश:)**

हनुमान नाम कैसे पड़ा?

हमारे देश के लगभग सभी गाँव-शहरों में रामलीला का आयोजन होता है। रामलीला में बच्चों के लिए सबसे अधिक मोहक, रोचक और आकर्षक व्यक्तित्व यदि किसी का है, तो वह हनुमानजी का है। गाँवों में तो बच्चे खेल-खेल में ही रामलीला का मंच बना देते हैं। रामलीला में भी बच्चों को अपनी वानर-सेना बनाना सबसे अधिक अच्छा लगता है। कपड़े की पूँछ बनाकर, मुँह में लाल रंग लगाकर और थोड़ा फुलाकर, हाथ में लकड़ी की गदा लेते हुए और 'जय श्रीराम' के नारे लगाते हुए बच्चों की वानर सेना गली-गली घूमती है।

हनुमानजी का हनुमान नाम कैसे पड़ा, इसकी एक अद्भुत कथा है। हनुमानजी की माता का नाम अंजना और पिता का नाम केसरी था। माता अंजना बहुत भक्तिमती थीं और प्रतिदिन भगवान की पूजा-वन्दना करती थीं। एकबार वे शिशु हनुमान को पालने में सुलाकर वन में फूल आदि चुनने गईं। तब शिशु हनुमान अकेले हो गए। वे नींद से उठे और उन्हें जोरों की भूख लगी। उन्होंने यहाँ-वहाँ देखा, पर उन्हें खाने को कुछ नहीं दिखा। अचानक उनकी दृष्टि सूर्य पर गई। अभी तक पूरी तरह सूर्योदय नहीं हुआ था। शिशु हनुमान ने सूर्य को फल समझ लिया और उन्हें लगा कि फल जब दीखने में इतना चमकदार है, तो खाने में भी स्वादिष्ट होगा। वे उसे पकड़ने के लिए आकाश में उछल पड़े।

हनुमानजी उस समय भले ही शिशु थे, किन्तु वे तो वायुदेवता के अंश से भी उत्पन्न हुए थे। जन्म से ही उनमें अपार शक्ति थी। तो, वे सूर्य को फल समझकर उसे खाने के लिए आकाश में उछल पड़े। पहले तो उन्हें लगा कि फल पास में ही है, पर जैसे-जैसे आगे बढ़ते गए, उन्हें समझ में आया कि थोड़ा अधिक प्रयास करना पड़ेगा। वे बहुत तेजी से दौड़ने लगे।

वायुदेवता ने देखा कि शिशु हनुमान तेजी से दौड़े जा रहे हैं। उन्हें भय हुआ कि कहीं सूर्य की तेज किरणें शिशु हनुमान की क्षति न कर दें। इसलिए पवनदेव बर्फ के समान शीतल होकर शिशु हनुमान के साथ चलने लगे। हनुमानजी ने सूर्य को पकड़ लिया और उसके साथ खेलने लगे।

उस दिन अमावस्या की तिथि थी। सूर्यदेवता को ग्रसने के लिए राहु आया था। उसे देखकर आश्चर्य हुआ कि यह कौन बालक है, जो सूर्यदेव के साथ खेल रहा है। राहु जैसे ही सूर्य को ग्रसने के लिए आया, तो शिशु हनुमान ने उसे अपनी मुट्ठी में पकड़ लिया। बेचारा राहु हनुमान की मुट्ठी में छटपटाने लगा। बड़ी मुश्किल से वह अपने प्राण बचाकर भागा।

राहु भागकर देवराज इन्द्र के पास पहुँचा और उनसे शिकायत करने लगा कि आपने सूर्यदेवता को ग्रसने के लिए किसी दूसरे राहु को अधिकार क्यों दे दिया। देवराज इन्द्र के तो आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रही। राहु ने रो-रो कर पूरी कहानी उन्हें सुनाई। इन्द्र अपने भव्य हाथी ऐरावत पर चढ़कर उस बालक और सूर्यदेवता को देखने गए। राहु भी उनके साथ-साथ चला।

राहु फिर से जैसे ही सूर्यदेवता को ग्रसने आगे बढ़ा, तो शिशु हनुमान ने उसे फिर से पकड़ लिया। उन्हें लगा कि राहु भी कोई स्वादिष्ट फल के समान होगा। वह चिल्लाता हुआ देवराज इन्द्र के पास पहुँचा। अब हनुमान की दृष्टि ऐरावत पर गई। उन्हें लगा कि यह भी कोई बड़ा सफेद फल है। हनुमान तो उस समय शिशु ही थे, इसलिए फल और प्राणी में अन्तर कर पाने की समझ उनमें नहीं थी। वे जैसे ही ऐरावत पर झपटे, तभी इन्द्र ने अपना वज्र उठा लिया। उनका वज्र हनुमान की बायीं ठुड्डी (हनु) में लगा। उनका हनु टूट गया और वे पर्वत शिखर पर गिरकर मूर्च्छित हो गए। इन्द्र को पता नहीं था कि यह बालक कौन है।

पवनदेव ने अपने पुत्र को घायल देखा, तो उन्होंने पूरे संसार में अपनी वायु शक्ति बन्द कर दी। तब सभी देवता उनके पास आए और उन्होंने शिशु हनुमान की मूर्च्छा दूर की। ब्रह्मा ने हनुमान को आशीर्वाद दिया कि इसे ब्रह्मशाप नहीं लगेगा और शस्त्र इसे काट नहीं सकेंगे। देवराज इन्द्र ने कहा, 'मैंने इस बालक की ठुड्डी तोड़ी थी, इसलिए इसका नाम हनुमान होगा। मेरे वज्र का इस पर कोई असर नहीं होगा और इसका शरीर वज्र के समान कठोर होगा।' अन्य देवताओं ने भी शिशु हनुमान को अनेक वरदान दिए। ○○○

आत्मविश्वास से चुनौतियों का सामना करें

स्वामी मुक्तिमयानन्द

रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, चेन्नई

स्वामी विवेकानन्द बच्चों में बचपन से ही अच्छे संस्कार देने की बात करते थे। सुसंस्कार सुविचारों से आते हैं। स्वामीजी विचारों का महत्त्व समझाते हुए कहते हैं, ''हम अपने विचारों से ही बने हैं । इसलिए इस बात का ध्यान रहे कि आप क्या सोचते हैं। शब्द गौण हैं, विचार रहते हैं, वे दूर तक यात्रा करते हैं।'' यदि हम अर्जुन के चरित्र को देखें, तो पायेंगे कि उन्होंने वीरता, पराक्रम, साहस, संयम, सत्यनिष्ठा और आत्मविश्वास के गुण को बचपन से ही आत्मसात् किया था। तभी वे श्रीकृष्ण के वचनों का यथार्थ मर्म समझ सके थे।

जीवन में जब हम कोई नया साहसिक कार्य करने को अग्रसर होते हैं, तब हमारा मन अनेक शंका-कुशंकाओं से भरा रहता है। अर्जुन की भी यही स्थिति थी, पर उनमें सर्वोत्तम गुण आत्मविश्वास का था। जीवन के निर्णायक पलों में आगे बढ़ने के लिये आत्मविश्वास से बढ़कर कोई सहायक गुण नहीं। जीवन में विकल्प दो ही हैं - युद्ध या पलायन। परिस्थितियों का सामना कर सफलता अर्जित करने के लिए आत्मविश्वास की अत्यन्त आवश्यकता है ।

सर्वप्रथम आत्मविश्वास ही हमारे मन को कार्य में प्रवृत्त होने को प्रेरित करता है। यह हमारे मन को ढाल बनाकर भय, कुर्तक और चिन्ताओं से मुक्त रखता है। जब मन शान्त, स्थिर और आत्मविश्वास से पूर्ण हो, तभी हम कार्य के हर पहलू को ठीक से समझने और उसे सूक्ष्मता से जानने में सक्षम होते हैं।

श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं – योग: कर्मसु कौशलम् – कुशलता से कर्म करना योग है। व्यर्थ चिन्ताओं, कुतर्कों, भय आदि में सिर्फ हम शक्ति का क्षय करते हैं। आत्मविश्वास से परिपूर्ण मन कार्यों को सुस्पष्ट विश्लेषण कर सही रास्ता अपनाता है और कई विरोधाभासी व उलझन भरी परिस्थितियों को धैर्य से सुलझाने की क्षमता प्रदान करता है। कार्य की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि हम प्रत्येक विकल्प को सूझबूझ से, उसके पक्ष-विपक्ष का विचार कर कार्य की योजना बनाएँ । यदि किसी कारणवश कार्य में असफलता मिले, तो आत्मविश्वासी व्यक्ति अपनी त्रुटियों को ढूँढ़कर उसे ठीक करने का प्रयास करता है । बुराई पराजय में नहीं, बल्कि पराजित होकर हतोत्साहित हो जाने में है । अनुभव तो एक सुप्रतिष्ठित जीवन की पूँजी है, जिसे हम नई पीढ़ियों से साझा करते हैं। आत्मविश्वास ही हमें असफलताओं से ऊबार कर भूलों से सीखने की क्षमता देता है।

क्या हम अपने जीवन में प्रगति चाहते हैं? क्या हम नई चुनौतियों को स्वीकार करने को तैयार हैं? क्या हम नई ऊँचाईयों को छूने का साहस रखते हैं? अगर इसका जवाब 'हाँ' है, तो जीवन में सर्वप्रथम आत्मविश्वास को जगाना होगा।

स्वामी विवेकानन्द तो यहाँ तक कहते हैं कि जिसे स्वयं में विश्वास नहीं, उसे ईश्वर में कभी विश्वास नहीं हो सकता। अत: हमें जीवन में इस उत्तम गुण को लाना होगा। ऐसे व्यक्तियों एवं विचारों का संग करना होगा, जिनके द्वारा यह भाव और भी सुदृढ़ हो और हम उत्साहपूर्वक अपने उद्देश्यों की ओर आगे बढ़ें ।

जीवन में प्रत्येक कदम पूरी श्रद्धा, स्थिरता, धैर्य व साहस से बढ़ाना होगा। हमारा प्रत्येक प्रयास जीवन में कुछ अनमोल शिक्षा प्रदान करता है, या तो हमें सफलता का आनन्द प्राप्त होगा या असफलता का अनुभव। दोनों ही जीवन के सौन्दर्य हैं, दोनों का ही समान महत्त्व है।

स्वामी विवेकानन्द की यह बात हमें सदा प्रेरित करती है, ''आत्मविश्वास का आदर्श ही हमारी सबसे अधिक सहायता कर सकता है। यदि इस आत्मविश्वास का और भी विस्तृत रूप से प्रचार होता और यह कार्यरूप में परिणत हो जाता, तो मेरा दृढ़ विश्वास है कि जगत में जितना भी दुख और अशुभ है, उसका अधिकांश गायब हो जाता। मानवजाति के समग्र इतिहास में सभी महान स्त्री-पुरुषों में यदि कोई महान प्रेरणा सबसे अधिक सशक्त रही है, तो वह यही आत्मविश्वास ही है। वे इस ज्ञान के साथ पैदा हुए थे कि महान बनेंगे और महान बने भी।''

हमारे जीवन में भी आत्मश्रद्धा का विकास हो, ईश्वर में हम पूर्ण श्रद्धा करें, किसी भी परिस्थिति से पलायन न कर उसे दृढ़ता से स्वीकार करें और चुनौतियों का सामना कर सफलता प्राप्त करें । ❍❍❍

गीतातत्त्व चिन्तन (८/८)

(आठवाँ अध्याय)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व चिन्तन' भाग-१,२, अध्याय १ से ६वें अध्याय तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ७वाँ अध्याय का 'विवेक ज्योति' के १९९१ के मार्च अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है ८वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन रामकृष्ण अद्वैत आश्रम के स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है । सं.)

ईशावास्योपनिषद् के पाँचवे मन्त्र में आत्मा के सम्बन्ध में कहा है –

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ।।५।।

– "वह हिलता भी है और नहीं भी हिलता। वह कम्पनशील भी है और अकम्पनशील भी। वह बहुत दूर है और वह बहुत समीप भी है। वह सबके अन्दर है और वह सबके बाहर है।" ये तो सब विरोधी गुण हैं। विरोधी गुणों से युक्त करके बताया गया, जिसे अंग्रेजी में कहते हैं Process of Dialectics – वैतर्किक प्रणाली। वेदान्त की भाषा में, न्याय की भाषा में, इस वैतर्किक प्रणाली के माध्यम से इस गूढ़ विषय को सामने रखने की चेष्टा की गई। विज्ञान के क्षेत्र में भी यह वैतर्किक प्रणाली होती है। जैसे इलेक्ट्रॉन, wave है या particle है, इसके सम्बन्ध में वैज्ञानिक आज तक एक मत नहीं हो सके हैं। क्योंकि इलेक्ट्रॉन का वर्तन कभी कणात्मक है, particle के समान है और कभी तरंगात्मक है, wave के समान है। तो उन्होंने देखा कि इलेक्ट्रॉन का वर्तन दोनों ही प्रकार का है। इसीलिए एक नया शब्द उन्होंने गढ़ दिया, कि इलेक्ट्रॉन का वर्तन किस प्रकार से होता है – Wavicle के समान। तो Wave से Wav ले लिया, particle से icle ले लिया। दोनों को जोड़ दिया तो एक नया शब्द बना दिया Wavicle। यह Process of Dialectics है। विज्ञान के क्षेत्र में भी जहाँ पर भौतिकता है, जहाँ पँच इन्द्रियों के द्वारा ग्राह्य जगत् से ही सरोकार होता है, तो वहाँ पर इस वैतर्किक प्रणाली का उपयोग किया जाता है। यह तो आत्मतत्त्व है। इतना गम्भीर और इतना सूक्ष्म है। यहाँ आपात विरोधी जो गुण दिखाई देते हैं, उन गुणों के आधार पर आत्मा के गुणों का निर्वचन करने का प्रयास किया जाता है। तो यह है निर्गुण-निराकार उपासना की विधि।

तीसरा है सगुण-साकार, जिसकी चर्चा १४ वें श्लोक में की जाएगी। वहाँ मानों हम भगवान में गुण भी देखते हैं, और उनका रूप भी देखते हैं। हम किसी रूप के प्रशंसक हैं, भक्त हैं। हम उस भगवान को राम के रूप में, कृष्ण के रूप में, रामकृष्ण के रूप में, भिन्न-भिन्न रूपों में देखते हैं और देखकर के उस रूप को प्रेम करते हैं। हमारा मन उसमें निविष्ट होता है। यह सगुण-साकार है। तो तीनों प्रकार की बातें यहाँ पर कही गयीं। यहाँ ८वें श्लोक में जो परम दिव्य पुरुष कहा है वह सगुण-निराकार का वर्णन है। साधक अभ्यासयोग से युक्त होकर उस सगुण निराकार परम तत्त्व को प्राप्त होता है।

अब यह जो अभ्यासयोग है, इसका क्या मतलब है? अभ्यासयोग के सम्बन्ध में हमने पहले भी बताया था। इसके दो अर्थ हैं – एक अर्थ तो वह है कि बारम्बार हम अपने मन को भगवान के चरणों में रखने का अभ्यास करते हैं। मन भागता है, उसको फिर पकड़कर लाते हैं और पुन: भगवान के चरणों में रखते हैं। यह अत्यन्त ऊबा देनेवाला प्रसंग मालूम पड़ता है। पर जो इस अत्यन्त ऊबा देनेवाली प्रक्रिया से बिना उकताये बारम्बार इसका अभ्यास करता रहता है, वह इसमें सफल भी होता है। आप सगुण-साकार अथवा सगुण-निराकार का अभ्यास कर सकते हैं। अगर सगुण-निराकार है, तो उसमें ईश्वर के गुणों का चिन्तन तो हो ही रहा है। पर साथ ही आप ज्योतिस्वरूप ईश्वर का चिन्तन भी कर रहे हैं। मन भागता है, उसे फिर से लाते हैं और ज्योति के ध्यान में उसे निविष्ट करते हैं। आपने मन के दो भाग बना लिए। एक भाग है जो बैठा हुआ ध्यान कर रहा है, चाहे रूप में, चाहे ज्योति में। मन के दूसरे भाग को आपने चौकीदार बनाकर कहा – चौकीदार, तुम इस मन पर चौकीदारी करते रहना, देखना यह भागे नहीं यहाँ से। हम देखते हैं कि थोड़ी देर बाद ये दोनों ही भाग जाते हैं। चौकीदार भी भाग गया और जो ध्यान कर रहा था, वह भी भाग गया। बाद में चौकीदार को स्मरण होता है कि अरे ! मैं तो वहाँ चौकसी करने के लिए बैठा था

और ये तो मुझे भगाकर ले गया। वह फिर पकड़कर लाता है और दोनों थोड़ी देर फिर बैठते हैं। पर दो क्षण बाद फिर से भाग जाते हैं। यह प्रक्रिया अत्यन्त ऊबाउ मालूम पड़ती है। पर जब हम बारम्बार इसका अभ्यास करते हैं, तब क्या होता है? अभ्यास करने से हम यह देखते हैं कि मन के भागने की तीव्रता और अवधि कम हो जाती है। यह अभ्यासयोग का पहला तत्पर्य है। **जिस अभ्यास के द्वारा हम मन को सांसारिक विषयों से रमने या आसक्त होने न देकर ईश्वर के श्रीचरणों में निविष्ट कर सकें, वही अभ्यासयोग है।** इस अभ्यासयोग के द्वारा हम उस अवधि को बढ़ाने की चेष्टा करते हैं, जिसके तहत हम अधिक-से-अधिक समय तक के लिए अपने मन को सांसारिक विषयों से उपरत करके प्रभु में मग्न करने की चेष्टा करते हैं।

दूसरा अभ्यासयोग है, जिसे राजयोग का अभ्यासयोग कहा जाता है। इसके अन्तर्गत आते हैं – अष्टांगयोग। जैसे यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। समाधि तो हमारा लक्ष्य है। पर इसके पहले सात अन्य सोपान हैं, जो हमें समाधि में ले जाते हैं। इन सात सोपानों का जो अभ्यास है, उस अभ्यास को भी अभ्यासयोग कहा गया है। जो ध्यान करेगा, वह क्या करेगा? इन यम, नियमों आदि का पालन करेगा। फिर आसन में बैठेगा। आसन का मतलब? जहाँ पर हम सुखासन में बैठ सकें। अभी जब हम बैठते हैं, तो जल्दी-जल्दी आसन बदलते हैं। पैर दर्द देने लगते हैं। हमें अड़चन होने लगती है। हमें असुविधा होने लगती है। हम दस मिनट बैठ नहीं पाते हैं कि शरीर में हलचल उत्पन्न होने लगती है और हम आसन बदल देते हैं। आसन का मतलब यह है कि हम एक ही आसन में अपने को अधिक देर तक रख सकें। हम सुखपूर्वक जिस आसन में अधिक देर तक बैठे रह सकते हैं, उसको आसन कहा गया है। वह भी अभ्यास के द्वारा सम्भव होता है। फिर प्राणायाम का अभ्यास आता है। उसके बाद प्रत्याहार। प्रत्याहार का अर्थ क्या होता है? अपनी इन्द्रियों को विषयों से वापस लौटाना, भीतर की ओर मोड़ना। जो इन्द्रियाँ सदैव बाहर की ओर जाने के लिए प्रस्तुत रहती हैं, उन्हें भीतर की ओर मोड़ देना ही प्रत्याहार कहलाता है। उसी प्रकार धारणा और ध्यान में सातों सोपान हैं, जो अन्ततोगत्वा उस आठवें लक्ष्य समाधि में समाहित हो जाते हैं। यही राजयोग का अष्टांगयोग साधन है। यहाँ प्रभु कहते हैं - इस अभ्यासयोग के द्वारा अन्य किसी दूसरी जगह नहीं जानेवाले चित्त के द्वारा हर समय अनुचिन्तन करते हुए, स्मरण करते हुए, साधक उस दिव्य परम पुरुष को प्राप्त हो जाता है।

अब परम दिव्य पुरुष कैसा है, उसका वर्णन इसके बाद के श्लोक में बताया गया है –

कविं पुराणमनुशासितार
मणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूप
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।।९।।

य: (जो) कविं (सर्वज्ञ) पुराणं (अनादि) अनुशासितारं (नियन्ता) अणो: अणीयान् (सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर) सर्वस्य (सबका) धातारं (विधाता) अचिन्त्य रूपं (अगोचर) आदित्यवर्णं (सूर्य के समान प्रकाशमान) तमस: परस्तात् (अन्धकार से परे) (परम पुरुष) (का) अनुस्मरेत् (स्मरण करता है)

''जो सर्वज्ञ, अनादि, सबके नियन्ता, सूक्ष्म से सूक्ष्मतर, सबका विधाता, मलिन मनोबुद्धि के अगोचर, सूर्य के समान भास्वर, (अज्ञान मोह) अन्धकार से परे अवस्थित (परम पुरुष का) स्मरण करता है।''

प्रयाणकाले मनसाचलेन
भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्
स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।।१०।।

प्रयाणकाले (अन्तकाल में) अचलेन मनसा (स्थिर चित्त से) भक्त्या (भक्तिपूर्वक) च (और) योगबलेन (योगबल के द्वारा) युक्त: (युक्त होकर) प्राणं (प्राण को) भ्रुवो: मध्ये (दोनों भ्रुवों के बीच) सम्यक् आवेश्य (अच्छी तरह से स्थापित करके) स: (वह) तं (उस) दिव्यं परमं पुरुषं (दिव्य परम पुरुष को) उपैति (प्राप्त होता है)।

– ''वह अन्तकाल में स्थिर चित्त से भक्तिपूर्वक और योगबल के द्वारा युक्त होकर प्राण को दोनों भ्रुवों के बीच अच्छी तरह स्थापित करके उस परम दिव्य पुरुष को प्राप्त होता है।'' **(क्रमश:)**

स्वामी विवेकानन्द की कथाएँ और दृष्टान्त

(स्वामीजी ने अपने व्याख्यानों में दृष्टान्त आदि के रूप में बहुत-सी कहानियों तथा दृष्टान्तों का वर्णन किया है, जो १० खण्डों में प्रकाशित 'विवेकानन्द साहित्य' तथा अन्य ग्रन्थों में प्रकाशित हुए हैं। उन्हीं का हिन्दी अनुवाद क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है, जिसका संकलन स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

९४. भगवान बुद्ध की सलाह

बौद्ध धर्म हमारे सम्प्रदायों में से एक है । गौतम नाम के एक महापुरुष ने उन दिनों प्रचलित सतत दार्शनिक वाद-विवादों, जटिल कर्मकाण्डों तथा जाति-व्यवस्था से ऊबकर इसकी स्थापना की थी । कुछ लोग कहते हैं कि मेरा एक विशेष कुल में जन्म हुआ है, इसलिए मैं उन लोगों से श्रेष्ठ हूँ, जिनका ऐसे वंश में जन्म नहीं हुआ है । वे (बुद्धदेव) भयंकर पुरोहिती व्यवस्था के भी विरोधी थे । उन्होंने एक ऐसे धर्म का प्रचार किया, जिसमें स्वार्थसिद्धि के लिये कोई स्थान न था; और जो ईश्वर के अस्तित्व-विषयक दर्शन या सिद्धान्त की दृष्टि से पूर्णतः अज्ञेयवादी था । उनसे बहुधा ईश्वर के अस्तित्व के बारे में प्रश्न किये जाते थे, परन्तु उन्होंने हर बार यही उत्तर दिया, "मैं नहीं जानता ।" जब उनसे मनुष्य के सच्चे कर्तव्य के विषय में पूछा जाता, तो वे कहते, "भले बनो और भले कर्म करो ।"

एक बार पाँच ब्राह्मणों ने आकर उनसे अनुरोध किया कि वे उन लोगों के विवाद का निपटारा कर दें । उनमें से एक बोला, "महाराज, मेरा शास्त्र कहता है कि ईश्वर ऐसा-ऐसा है और उसकी प्राप्ति का यही मार्ग है ।" दूसरे ब्राह्मण ने कहा, "यह सब गलत है, क्योंकि मेरे ग्रन्थ में ऐसा-ऐसा लिखा है और ईश्वर को पाने का यह मार्ग है ।" इसी प्रकार दूसरों ने भी उनके सामने इसी तरह की बातें रखीं ।

बुद्धदेव ने शान्तिपूर्वक उन सभी की बातें सुनीं और एक-एक कर उनसे पूछा, "क्या आपके शास्त्र में यह लिखा है कि ईश्वर क्रोध करता है या किसी की हानि करता है या वह अपवित्र है?" सबने कहा, "नहीं महाराज, सभी शास्त्र कहते हैं कि ईश्वर पवित्र और मंगलमय है ।" इस पर बुद्धदेव बोले, "मित्रो, तो फिर तुम पहले शुद्ध और सदाचारी बनने की चेष्टा क्यों नहीं करते, ताकि तुम्हें ईश्वर के स्वरूप का ज्ञान हो सके?" (७/१९७-९८)

९५. धर्मान्धता किसे कहते हैं?

दुराग्रही कई प्रकार के होते हैं । कुछ लोग शराब पीने के कट्टर विरोधी होते हैं, तो कोई सिगरेट पीने के । कुछ लोग सोचते हैं कि यदि मनुष्य सिगार पीना छोड़ दें, तो संसार में फिर से सतयुग लौट आयेगा । यह दुराग्रह स्त्रियों में ही अधिक दीख पड़ता है ।

एक दिन यहाँ – इस कक्षा में एक युवती उपस्थित थी । वह शिकागो की उन महिलाओं में से एक थी, जिन्होंने मिलकर एक संस्था बनायी है, जहाँ वे मजदूरों के लिए संगीत और व्यायाम का प्रबन्ध करती हैं । एक दिन वह युवती संसार में प्रचलित बुराइयों की चर्चा कर रही थी । उसने बताया कि वह उन्हें दूर करने का उपाय जानती है ।

मैंने पूछा, "तुम क्या जानती हो?" उसने उत्तर दिया, "क्या आपने 'हल हाउस' (Hull House) को देखा है?"

उसकी राय में यह 'हल हाउस' ही दुनिया की सारी बुराइयों को दूर करने का एकमात्र उपाय है । उसका यह अन्धविश्वास बढ़ता ही जायगा । मुझे उनके लिए खेद है । भारत में भी कुछ ऐसे दुराग्रही हैं, जो सोचते हैं कि वहाँ विधवा-विवाह प्रचलित हो जाने से सारी बुराइयाँ दूर हो जाएँगी । यह दुराग्रह है, हठधर्मिता है । (३/२३४)

९६. मानव जन्म की श्रेष्ठता

सब प्रकार के शरीरों में मानव-शरीर ही सर्वश्रेष्ठ है; मनुष्य ही सर्वोत्तम प्राणी है । मनुष्य सभी प्रकार के जीव-जन्तुओं और यहाँ तक कि देवताओं से भी उत्कृष्टतर है । मनुष्य से महत्तर दूसरा कोई भी नहीं है । यहाँ तक कि देवताओं को भी मुक्ति पाने के लिये इस मर्त्यलोक में लौटकर नरदेह धारण करना पड़ता है । जिस पूर्णता को पाने का एकमात्र मनुष्य ही अधिकारी है, उसे देवता तक नहीं पा सकते । यहूदियों और मुसलमानों के मतानुसार परमेश्वर ने देवदूतों और अन्य प्राणियों की सृष्टि करने के बाद मनुष्य को बनाया । मनुष्य को बनाने के बाद परमेश्वर ने देवदूतों को बुलाया और उन्हें मनुष्य को सलाम करने का आदेश दिया । इब्लिस को छोड़ बाकी सबने वैसा ही किया; इसलिये परमात्मा ने इब्लिस को शाप दे दिया, जिससे वह शैतान बन गया । इस रूपक के पीछे यह महान् सत्य निहित है कि संसार में मनुष्य जन्म ही अन्य सबकी अपेक्षा उत्कृष्ट है । (१/५३)

संस्कृति का भारतीय पक्ष

डॉ. राजकुमार उपाध्याय 'मणि'

विभागाध्यक्ष हिन्दी विभाग, सरगुजा विश्वविद्यालय अंबिकापुर (छत्तीसगढ़)

भारत अनुपम राष्ट्र है, तो निश्चय ही इसकी संस्कृति, शिक्षा, धर्म और राष्ट्रीयता भी अद्‌भुत होगी। इसे मैं नहीं कहता, अपितु भारत पर सैकड़ों वर्षों तक शासन करने वाले अँग्रेजों ने कहा। ब्रिटेन के भूतपूर्व प्रधानमंत्री लार्ड पामस्टर्न ने १९५८ ई. में कहा था – 'वे क्षेत्र जिनमें मनुष्य ने सर्वप्रथम विज्ञान और कला का अरुणोदय देखा, जिन पूर्वी क्षेत्रों में सभ्यता की चिर समृद्धि अपने शिखर पर पहुँच चुकी थी, आज एक ऐसे लोगों के अधीन हो गये, जो उस समय नितान्त जंगली थे।' वास्तव में यह भारत आज का नहीं, अपितु उस समय का है जब सूर्य की प्रथम किरणें यहीं पर फैली थीं।

हमारी संस्कृति का मानव के चतुष्पथों और उसके जीवन में नित्य का सम्बन्ध है। संस्कृति मानव-जीवन के अमूल्य संस्कारों की संचित वह राशि है, जो जीवन को चरमोत्कर्ष तक ले जाती है। संस्कृति जीवन के समग्र ज्ञान-विज्ञान, धर्म-अध्यात्म, कला-साहित्य, आचार-व्यवहार की परिपूर्णता है। यह जीवन के पतन से उत्थान, विकास और मोक्ष की प्राप्ति का पथ-प्रदर्शक है। संस्कृति ही जीवन की उत्कृष्ट विचार-भावना, सत्कृत्य, अनुभव की विशिष्ट सिद्धि है, जो जीवन की नित्यता को प्रतिक्षण दर्शाती है। अत: भारतीय संस्कृति के तीन प्रमुख अंग माने जाते हैं, जिनसे संस्कृति आज तक सुरक्षित है। इनके नाम हैं – भारतीय ग्रन्थ, तीर्थ-स्थान और महापुरुष।

भारतीय संस्कृति नितान्त प्राचीन संस्कृति है। इसे सनातन संस्कृति, आर्य संस्कृति अथवा वैदिक या हिन्दू संस्कृति के नामों से भी जाना जाता है। गंभीरतापूर्वक इसकी सूक्ष्मता, व्यापकता और समृद्धि को आँकना असम्भव है। इस संस्कृति के निर्माता, नियन्त्रक-निर्देशक व मन्त्रद्रष्टा ऋषियों की असीम ज्ञान-चिन्तन की मंजुल-प्रभा ग्रन्थों में संचित रही है। मनुष्य की सहजात प्रवृत्तियों एवं प्राकृतिक शक्तियों के परिष्कार का द्योतक संस्कृति है। मानव इसके प्रभाव से ही आत्मोत्थान के लिए सामाजिक, साहित्यिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं कलात्मक गतिविधियों में प्रवृत्त होता है। संस्कृति केवल धर्म, सभ्यता, ज्ञान एवं आचरण तक ही सीमित नहीं है, क्योंकि भारत एक विशाल देश है और उसकी संस्कृति-सभ्यता, भौगोलिक स्थितियाँ, ऐतिहासिक घटनाएँ, नदियाँ, समुद्र, नगर, तीर्थस्थान सभी सांस्कृतिक दृष्टि से जीवन को सतत गतिशील करते हैं एवं हमारे इतिहास का बोध कराते हैं।

संस्कृति को सभ्यता का पर्याय माना जाता है – 'संस्करोति इति संस्कृति' अर्थात् संस्कृति वह है, जिसमें संस्करण होता है। संस्कृति का शाब्दिक अभिप्राय है – शुद्धि या परिष्कार। यह आचरणगत सभ्यता का वह रूप है, जो मानसिक तथा आध्यात्मिक विशेषताओं से सम्पृक्त है। मनुष्य मात्र के मनसा, वाचा और कर्मणा वृत्तियों के संस्कारों में परिष्कार एवं औदार्य का निरन्तर विकास संस्कृति का ध्येय है तथा संस्कृति का मानवीय संस्कारों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखा है –'वास्तव में संस्कृति वह है जो सूक्ष्म एवं स्थूल, मन एवं कर्म, अध्यात्म जीवन और प्रत्यक्ष जीवन का कल्याण करती है।'

'भारतीय संस्कृति' के स्थान पर कई लोग 'आर्य संस्कृति', 'हिन्दू संस्कृति' इत्यादि शब्दों का प्रयोग करते हैं। 'आर्य' शब्द का अर्थ संस्कृत भाषा में उत्कृष्ट या उदार माना जाता है। भारत में एक सनातन संस्कृति अनादिकाल से प्रवहमान है, किन्तु इसकी सहवर्ती संस्कृतियाँ विभिन्न क्षेत्रों एवं कालों में पुष्पित-पल्लवित होती रही हैं, जिसमें सारस्वत संस्कृति गांगेय संस्कृति को प्रथम माना जा सकता है। महाभारत के अनुसार उत्तरापथ की भूमि सागर से जलमग्न थी, किन्तु अगस्त्य ऋषि द्वारा पान कर लिए जाने के कारण यह क्षेत्र जलहीन हो गया। अतएव रघुवंशीय भगीरथ राजा ने स्वर्ग से गंगावतरण कराया, फलत: यह हरित और उर्वर भूमि में परिवर्तित हो गयी। अत: इस क्षेत्र को गांगेय संस्कृति के नाम से जाना जाता है। इसी प्रकार सिन्धु नदी के क्षेत्र को सैन्धव संस्कृति और सरस्वती नदी के क्षेत्र को सारस्वत संस्कृति के रूप में जानते हैं। निश्चित रूप से भारत की इन संस्कृतियों में सारस्वत, गांगेय, सैन्धव, आर्य तथा द्रविड़ जैसी विभिन्न संस्कृतियाँ, सभ्यताएँ निर्मित होती गईं।

संस्कृति का संरक्षण साहित्य से होता है, क्योंकि किसी संस्कृति की धरोहर उसके द्वारा संचित ज्ञानकोश होते हैं। वैदिक एवं पौराणिक संस्कृति की पहचान भारतीय ग्रन्थ वेद

(संहिता), ब्राह्मण, उपनिषद, आरण्यक, वेदांग, स्मृति, दर्शन, पुराण, रामायण, महाभारत, गीता, आयुर्वेद, ज्योतिर्वेद, रसशास्त्र, भाषाशास्त्र, साहित्यशास्त्र, छन्द शास्त्र, विविधकला, त्रिपिटक, जैनागम, श्रीरामचरितमानस, गुरुग्रंथसाहब से है, जिनमें सनातन संस्कृति की सरिता निरन्तर प्रवाहित हो रही है। ये सभी ग्रन्थ संस्कृति को समझने के माध्यम हैं।

'**ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः**' –ऋषि मन्त्रद्रष्टा हैं। भारत के दार्शनिकों ने अपनी मेधा के द्वारा ज्ञान-विज्ञान की समस्त ऊँचाइयों को माप लिया है। भारत में नाना विषयों के विद्वान अपनी कीर्तिपताका फैलाते रहे हैं। प्राचीन भारतीय षड्दर्शनों की अपनी विशिष्ट मान्यता है। अनादिकाल से ईश्वर, जगत, जीव के चिन्तन की प्रक्रिया भारत में सदैव विद्यमान रही है। इस दिशा में दार्शनिकों ने भारतीय संस्कृति को विभिन्न आयामों से देखा है। आधुनिक दार्शनिक – रवीन्द्रनाथ टैगोर, महर्षि अरविन्द, राधाकृष्णन्, साने गुरुजी, सात्वलेकर, अभय भट्टाचार्य, बलदेव उपाध्याय आदि ने संस्कृति की भिन्न-भिन्न व्याख्या की है।

संस्कृति को समझने का एक महत्वपूर्ण आधार तथा उपकरण वहाँ का साहित्य है। संस्कृति की आत्मा की झलक साहित्य में मिलती है। संस्कृति के संदेश को जनमानस तक पहुँचाने के कारण साहित्य संस्कृति का वाहन होता है। वैदिक एवं लौकिक संस्कृति के साहित्य तथा प्राकृत-पालि या अपभ्रंश के साहित्य में भारतीय संस्कृति जीवन्त है। इसके साथ ही भास, कालिदास, अवश्वघोष, भवभूति, भारवि, माघ, श्रीहर्ष के अतिरिक्त कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, भूषण आदि अनेक कवियों के साथ बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, शरत्चन्द्र, सुब्रह्मण्यम भारती, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बाबू श्यामसुन्दर दास, रामचन्द्र शुक्ल, महावीर प्रसाद द्विवेदी, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', महादेवी वर्मा, पूर्ण सिंह, चतुरसेन शास्त्री, देवराज, हजारीप्रसाद द्विवेदी, माखनलाल चतुर्वेदी, प्रेमचन्द, वासुदेवशरण अग्रवाल, रामनरेश त्रिपाठी, रामधारी सिंह 'दिनकर', रामविलास शर्मा, अज्ञेय, आचार्य रघुवीर, डॉ. विद्यानिवास मिश्र, धर्मवीर भारती, देवेन्द्रनाथ शर्मा, मंगलदेव शास्त्री, शिवप्रसाद सिंह, भानुप्रताप शुक्ल प्रभृति अनेकानेक साहित्यकारों ने भी संस्कृति, कवि-लेखकों को व्याख्यायित किया है।

संस्कृति का संरक्षण-संवर्धन सदैव करना पड़ता है। क्योंकि इसका उत्थान एवं पतन भी असम्भावी नहीं होता है। श्री रामधारी सिंह दिनकर जी ने लिखा है कि भारतीय संस्कृति में चार बड़ी क्रान्तियाँ हुई हैं और हमारी संस्कृति का इतिहास उन्हीं चार क्रान्तियों का इतिहास है। प्रथम क्रान्ति-आर्यों का आर्येतर जातियों से सम्पर्क, द्वितीय क्रान्ति महावीर और बुद्ध का वैदिक धर्म के विरुद्ध विद्रोह, तृतीय क्रान्ति इस्लाम धर्म का आगमन और चतुर्थ क्रान्ति आधुनिक भारत में यूरोप का प्रवेश है, जिनके सम्पर्क में हिन्दुत्व और इस्लाम इन दोनों में नवजीवन का उन्मेष हुआ है। भारत की संस्कृति आरम्भ से ही सामाजिक रही है । उत्तर-दक्षिण पूर्व-पश्चिम, देश में जहाँ भी जो हिन्दू बसते हैं, उनकी संस्कृति एक है एवं भारत की प्रत्येक क्षेत्रीय विशेषता हमारी इसी सामाजिक संस्कृति की विशेषता है । ऐसे पुनर्जागरण के युग में देश की संस्कृति को नई चेतना प्रदान करने वाले राजाराममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, केशवचन्द्र सेन, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ उल्लेखनीय हैं। इनकी संस्कृति सम्बन्धी नई व्याख्याओं से भारतीय समाज को नई जागृति मिली है।

भारत की स्वतन्त्रता के लिये देशभक्तों ने सब कुछ बलिदान दिया, संस्कृति एवं धर्म को नष्ट होने से सदैव बचाया, इसके लिये अनेक देशभक्त वीरों ने अपने प्राण न्यौछावर कर दिये । भारतीय संस्कृति की रक्षा करते हुए उसकी आधुनिक युग में प्रासंगिकता को भी रेखांकित करते हुए नई-नई व्याख्याएँ की गईं। इस दृष्टि से स्वातन्त्रवीर सावरकर, डॉक्टर हेडगेवार, श्री गुरुजी, पं. दीनदयाल उपाध्याय आदि देशभक्तों का चिन्तन सिरमौर है। इस श्रृंखला में एकनाथ रानाडे, बाबा साहब आप्टे, दत्तोपन्त ठेंगड़ी, राजेन्द्र सिंह बालासाहब देवरस, आदि राष्ट्रीय विचारकों की संस्कृति सम्बन्धी अवधारणाओं और व्याख्याओं से हमारा भारतीय जनमानस प्रभावित हुआ है।

राष्ट्रीय एकता में सन्तों एवं भक्तों की अनेकानेक सामाजिक एवं सांस्कृतिक भूमिकाएँ हैं। इन सन्तों ने देश की अखण्डता के लिये राष्ट्र-जागरण का सन्देश दिया, इन्होंने देश की सांस्कृतिक एवं भौगोलिक एकता-समरसता को सुरक्षित रखा, ये सदैव सजग और अडिग रहे। इन्होंने धर्म, संस्कृति, शिक्षा एवं समरसता के लिये अध्यात्म-दर्शन एवं ईश्वर गुणगान को आधार बनाया और इसके साथ ज्ञान एवं उपदेश के द्वारा धर्म तथा संस्कृति की सार्वभौमिक, सार्वकालिक व्याख्या करते हुए इसकी प्रासंगिकता को स्थापित किया। ऐसे राष्ट्र-संतों में जगद्गुरु शंकराचार्य, गुरु गोरखनाथ, स्वामी रामानन्द, स्वामी वल्लभाचार्य,

सन्त तुकड़ोंजी महाराज, श्रीराम शर्मा आचार्य, पं.रामकिंकर उपाध्याय, स्वामी रामसुखदास, गुरु गोविन्द सिंह, आदि-आदि का नाम अग्रणी है जिनकी सांस्कृतिक व्याख्याओं से भारतीय संस्कृति में चिर नवीनताएँ आती रहीं।

देश के राजनेता भारत की स्वतन्त्रता के साथ-साथ इसकी संस्कृति एवं सभ्यता के प्रति निरन्तर चिन्तनशील, प्रगतिशील रहे हैं। यद्यपि महात्मा गाँधी संस्कृति की अपेक्षा सभ्यता शब्द को अधिक महत्त्वपूर्ण मानते थे। संस्कृति एवं सभ्यता की खोज करते हुए जवाहर लाल नेहरू ने 'भारत की खोज' (डिस्कवरी ऑफ इण्डिया) नामक पुस्तक की रचना की थी। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जी का संस्कृति सम्बन्धी गहरा चिन्तन प्राप्त होता है। प्राय: अनेक राजनेताओं ने स्वतन्त्रता की लड़ाई के साथ कलम की भी लड़ाई लड़ी। इनमें अधिकांश राजनेता वकालत करते थे अथवा अखबार या पत्र-पत्रिका निकालते थे, जिससे उन्होंने अपने चिन्तन को मुखर रूप दिया। ऐसे विचारक राजनेताओं में पं. महामना मालवीय, महात्मा गाँधी, डॉ, राजेन्द्र प्रसाद, सरदार वल्लभभाई पटेल, जवाहर लाल, सम्पूर्णानन्द, लोकमान्य तिलक, श्यामा प्रसाद मुखर्जी, राममनोहर लोहिया, आचार्य कृपलानी, नरेन्द्रदेव, पुरुषोत्तमदास टण्डन, भीमराव अम्बेडकर, जे. वी. कृष्णमूर्ति, हृदयनारायण दीक्षित आदि उल्लेखनीय नाम हैं।

अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने जहाँ भारतीय संस्कृति की प्रशंसा की, वहाँ कुछ विदेशियों ने निन्दा करने का प्रयास किया। भारतीय संस्कृति की अनेकता में एकता की विशेषता को विदेशी विद्वानों ने अस्वीकार करते हुए अपने-अपने ढंग से विचार व्यक्त किया कि सांस्कृतिक दृष्टि से भारत कभी एक राष्ट्र नहीं हो सकता, इसलिए अंग्रेजों ने भारत को उपमहाद्वीप की संज्ञा दी थी। इसी कारण से ब्रिटिश शासन काल में भाषा, संस्कृति, जाति और सम्प्रदाय के आधार पर ही इन लोगों द्वारा देश-विभाजन का निरन्तर षड्यन्त्र जारी रहा। इन समस्त षड्यन्त्रों के बावजूद भारत की सांस्कृतिक अखण्डता बनी रही, आघात-पर-आघात बहुत हुए फिर भी अनेक विदेशी विद्वानों ने संस्कृति की भूरि-भूरि प्रशंसा की। इस दृष्टि से हम कार्लमार्क्स, जेम्स रॉड, जर्मन कवि गेटे, जार्जग्रियर्सन, ऐनी बेसेंट, सिस्टर निवेदिता, मैक्समूलर, विन्टरनित्स के सांस्कृतिक दृष्टिकोण को महत्त्वपूर्ण मानते हैं।

भारतीय इतिहासकारों, विदेशी इतिहासकारों एवं मुस्लिम इतिहासकारों की भारतीयता, राष्ट्रीयता एवं संस्कृति सम्बन्धी मान्यताएँ सर्वथा पृथक-पृथक और यत्किंचित् समन्वयहीन हैं। इन इतिहासकारों में घटनाओं, प्रसंगों एवं विचारों सम्बन्धी तथ्यात्मकता का अभाव अवश्य है, जिसका कारण उनकी सोच एवं दृष्टि है। अनेक मान्यताओं के बावजूद विभिन्न इतिहासविदों ने संस्कृति सम्बन्धी विचार खुलकर प्रस्तुत किये हैं। प्रख्यात विद्वान श्रीधर भास्कर वर्णेकर ने लिखा है कि दक्षिण में आर्य और द्रविड़ संस्कृति का समन्वय तथा पूर्व में आर्य और मंगोलियन संस्कृति का समन्वय हुआ, इस प्रकार पूर्व वेदकाल से लेकर मंगोलियन समाज का आक्रमण स्थिर होने तक हिन्दू संस्कृति के निर्माण की प्रक्रिया चल रही थी। इस प्रकार वर्णेकर महोदय की भाँति जदुनाथ सरकार, आर. सी. मजूमदार, रामशरण शर्मा, सतीशचन्द्र, ए.डी. पुलाल्कर, के.ए. नीलकण्ठ शास्त्री, रामप्रसाद त्रिपाठी, राजबली पाण्डेय, के. एम. मुंशी, हीरालाल ओझा, बी.एन. लूनिया, एच. के. शेरवानी, आर. जी. वासक, ईश्वरी प्रसाद, आई.एच. सिद्दीकी, बेनी प्रसाद, बी.पी. सक्सेना, के. एन. चौधरी, के. एम. अशरफ, ठाकुर प्रसाद वर्मा, सतीशचन्द्र मित्तल आदि के विचारों का मूल्यांकन संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में अत्यन्त महनीय एवं परीक्षणीय है।

संस्कृति की व्याख्या अनेक विद्वानों ने अपने-अपने ग्रन्थों में की ही है, इसके अतिरिक्त संस्कृति एवं सभ्यता की परिभाषा और अर्थ अनेक कोशों एवं विश्वकोशों में भी दिया गया। किन्तु हिन्दी मानक कोश, वाङ्मयार्णव, वाचस्पत्यम्, हिन्दू धर्मकोश, हिन्दू विश्वकोश, एनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटानिका, एनसाइक्लोपीडिया ऑफ अमेरिका आदि में उल्लिखित संस्कृति के विषय की मीमांसा भारतीय परिप्रेक्ष्य में की जानी चाहिए। इस दिशा में 'भारतीय संस्कृति विश्वकोश' और 'भारतीय शिक्षा विश्वकोश' की नितान्त आवश्यकता है।

सनातन या भारतीय संस्कृति ही है, जो समस्त प्राणी – पशु-पक्षी, जीव-जन्तु, पेड़ पौधे, सकल चराचर सृष्टि के जीवों में दयाभाव एवं समान चेतना मानती है। नि:संदेह, भारतीय संस्कृति में धर्म-दर्शन और आचार-विचार के समन्वय से समरसता की स्थापना हुई है। भारतीय संस्कृति में जितनी गहरी अनुभूति, संवेदना और उदात्त भावना है, वैसी भूमण्डल के किसी संस्कृति में दृष्टिगोचर नहीं होती है। ○○○

हारो न हिम्मत बिसारो न राम को

स्वामी सत्यरूपानन्द

प्रभु को कभी न भूलना, यही सार बात है। भगवान को हृदय से पुकारते हुए संसार के सभी कार्य करो। उनका स्मरण, मनन, नाम-जप, प्रार्थना सब करते रहो। प्रत्येक कार्य का एक निर्धारित समय रहता है, वैसे ही भगवान को भी पुकारते रहो, अपनी दिनचर्या में उन्हें जोड़ लो। संसार में शान्ति से रहने का यही उपाय है।

मनुष्य का मन बहुत चालबाज है, वह कई बहाने बनाता रहता है। हमें मन की इस चालबाजी से बचना चाहिये। दृढ़तापूर्वक न चाहते हुए भी, मन लगे, चाहे न लगे, संसार के कार्यों को करते हुए, अपने व्यस्त जीवन में भी भगवान का नाम लेने की आदत डालनी चाहिए। मन में दो प्रकार की मुख्य वृत्तियाँ रहती हैं। पहला प्रेम और दूसरी घृणा। जिसके प्रति प्रेम रहता है, उसकी हमेशा याद आती रहती है। जिसके प्रति घृणा रहती है, उसकी हम उपेक्षा करते हैं। इसलिये हमें भगवान से प्रेम करना चाहिये और भगवान से विमुख करनेवाले विषयों से घृणा कर उनकी उपेक्षा करनी चाहिये।

भगवान का नाम लेने के लिए हमारे पास २४ घंटे हैं। हमको अपनी शक्ति के अनुसार नाम लेना चाहिए। संसार का अनुभव हमारा अनन्त जन्मों का है। हमें उसके अनुभव की आवश्यकता नहीं है। लेकिन भगवान का नाम लेने के लिये हमें पुरुषार्थ करके नाम-स्मरण की आदत डालनी है। हम सब श्रीमाँ की सन्तान हैं। उनकी कृपा सब पर सदा बरस रही है। महामाया कृपा कर अनित्यता का बोध करा देंगी और संसार के बंधन काट देंगी।

मन में अच्छे भावों का संस्कार डालना, भगवान के नाम का संस्कार डालना, इस जन्म की कमाई है। अच्छे संस्कारों से भगवान में रुचि पैदा होगी। इससे स्थायी संस्कार मन में बन जाता है, ये हमारी स्थायी सम्पत्ति है।

संसार के अधिकांश लोग केवल अपनी ही चिन्ता करते हैं, स्वार्थी हो जाते हैं। किन्तु सज्जन गृहस्थ लोग और साधु-संत दूसरों की सेवा करते हैं।

साधक को बीच-बीच में तीर्थाटन भी करना चाहिये। तीर्थों में भगवान का विशेष प्रकाश होता है। अशुद्ध मन लेकर तीर्थ में नहीं जाना चाहिए। हमें शुद्ध मन से तीर्थ में जाना चाहिये और मन की शुद्धि के लिये तीर्थ-देवता से प्रार्थना करनी चाहिये। हमें ऐसा करना चाहिये कि हमारा घर, हमारा मन ही तीर्थ बन जाय। भगवान के यहाँ गृहस्थ और संन्यासी का भेद नहीं है। वे तो प्रेम देखते हैं। हमारा प्रेम कहाँ है, यह महत्त्वपूर्ण है।

सहनशीलता के अभाव में साधक के मन में बहुत-से विक्षेप होते रहते हैं। सहनशीलता के अभाव में लड़ाई-झगड़े होते रहते हैं। वह छोटी-छोटी घटनाओं से चिढ़ जाता है। उससे उसके मन में विक्षोभ होता है और वह भगवान के पथ से च्युत हो जाता है। श्रीरामकृष्ण देव कहते थे – "जो सहता है, वह रहता है, जो नहीं सहता, उनका नाश हो जाता है।" इसलिये हमें सहनशील होना चाहिये। सहनशीलता गृहस्थ और संन्यासी दोनों के लिये बहुत आवश्यक है।

साधक को कभी भी किसी की निन्दा नहीं करनी चाहिये। निन्दा करने से परिवार-पड़ोस और समाज में विघटन होता है। परनिन्दा सबसे बड़ा पाप है। यह साधक-जीवन में विषतुल्य है। इससे सबको बचना चाहिये।

मन से लड़ने से कोई मन को जीत नहीं सकता। मन को बच्चे के जैसा समझना चाहिए। उसे सद्विचारों से सदाचार का प्रशिक्षण देना चाहिये। मन खाली रहने से नीचे जाता है। इसलिये मन को हमेशा सत्कर्म और सद्भाव में लगाये रखें। हम जो सोचते हैं, वही बन जाते हैं। इसलिये सदा शुभ मंगलमय संकल्प लें।

सत्संग करने से मन ऊपर उठता है। ईश्वर में लगता है। ईश्वर की सहायता जब मिलती है, तब हम जीवन में सफल होते हैं। ईश्वर की कृपा से ही उनकी अनुभूति होती है। ईश्वर मंगलमय हैं, वे जो कुछ भी करते हैं, हमारे कल्याण के लिये ही करते हैं। ऐसा विश्वास कर हमें प्रत्येक परिस्थिति में ईश्वर पर श्रद्धा-भक्ति करते रहना चाहिये।

OOO

रामकृष्ण संघ के संन्यासियों का दिव्य जीवन (१६)

स्वामी भास्करानन्द

(रामकृष्ण संघ के महान संन्यासियों के जीवन की प्रेरणाप्रद प्रसंगों का सरल, सरस और सारगर्भित प्रस्तुति स्वामी भास्करानन्द जी महाराज, मिनिस्टर-इन-चार्ज, वेदान्त सोसायटी, वाशिंग्टन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Life in Indian Monasteries' में किया है। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मठ, नागपुर के ब्रह्मचारी चिदात्मचैतन्य ने किया है। – सं.)

एक रहस्यपूर्ण सुगन्ध

रामकृष्ण संघ के संन्यास-प्रणाली के अनुसार मैं दो वर्ष बेलूड़ मठ के ब्रह्मचारी प्रशिक्षण केन्द्र (Training Center) में रहा। प्रशिक्षण के बाद मेरी ब्रह्मचर्य-दीक्षा हुई। उसके बाद मैं शिलाँग आश्रम वापस जाने वाला था।

बेलूड़ मठ में रहते समय मैं तथा अन्य साधु संघाध्यक्ष स्वामी शंकरानन्द जी महाराज (१८८०-१९६१) को प्रतिदिन प्रात:काल प्रणाम करने जाते थे। महाराज का कमरा पुराने साधु-निवास की दूसरी मंजिल पर था। जैसे ही हम महाराज के कमरे में जाने वाली सीढ़ी पर चढ़ते थे, तो उनके कमरे से धूपबत्ती की अच्छी सुगन्ध आती थी। उनके कमरे में प्रवेश करने से ऐसा लगता, जैसे हम धूपबत्ती की सुरभि से व्याप्त मन्दिर में आ गये हों। वह सुगन्ध इतनी मधुर थी कि मैं विस्मित होकर सोचता कि महाराज के कमरे में किस कम्पनी की धूपबत्ती जलाई जाती है।

स्वामी शंकरानन्द

शिलाँग आश्रम वापस जाने का मेरा समय निकट आ गया । एक दिन मैं स्वामी शंकरानन्दजी महाराज के प्रमुख सेवक ब्रह्मचारी 'न' से पूछा, ''क्या आप बतायेंगे कि महाराज के कमरे में कौन-सी कम्पनी की अगरबत्ती जलाई जाती है? मैं उस कम्पनी की कुछ अगरबत्तियाँ खरीद कर शिलाँग आश्रम ले जाना चाहता हूँ।''

उन्होंने एक साधारण कम्पनी का नाम बताया। मैंने उनसे कहा, ''उस कम्पनी को मैं अच्छी तरह जानता हूँ। लेकिन महाराज के कमरे की अगरबत्ती की सुगन्ध इससे बहुत अलग और मधुर है।''

ब्रह्मचारी महाराज ने कहा, ''मैं तुम्हें एक रहस्य बताता हूँ, जिसे मैंने एक-दो भक्तों के सिवाय अन्य किसी से नहीं कहा है।''

मैंने पूछा, ''क्या है वह रहस्य?''

उन्होंने कहा, ''तुम जिस सुगन्ध के बारे में कहते हो, वह किसी अगरबत्ती की नहीं, अपितु शंकरानन्द महाराज के शरीर से आती है।''

मैंने पूछा, ''सचमुच?''

ब्रह्मचारी महाराज ने कहा, ''हाँ, यह शत-प्रतिशत सत्य है। उनके शरीर से ही नहीं, उनके वस्त्र, कुर्ते, चादर से भी सुगन्ध आती है। कपड़ों को धोने के बाद भी कुछ सुगन्ध उनमें रहती है।''

ब्रह्मचारी 'न' के विश्वास को मैं तोड़ना नहीं चाहता था। मैं जानता था कि महान योगी अपने शरीर से ऐसी सुगन्ध प्रसारित कर सकते हैं, यह कोई असम्भव कार्य नहीं है। लेकिन रामकृष्ण संघ की परम्परा कुछ भिन्न है। हमारे रामकृष्ण संघ के आदर्श भगवान श्रीरामकृष्ण देव हैं। श्रीकृष्ण और बुद्ध के समान वे भी चमत्कार की उपेक्षा करते थे। श्रीरामकृष्ण और उनके संन्यासी शिष्यों के शरीर से ऐसी सुगन्ध निकलने की बात मैंने कभी नहीं सुनी थी। यह कैसे सम्भव हो सकता है कि स्वामी शंकरानन्द जी महाराज इस परम्परा के अपवाद हों?

मैंने सोचा कि इस बारे में किसी दूसरे से पूछा जाय। मैंने उनके दूसरे सेवक से इस रहस्यमयी सुगन्ध के बारे में पूछा।

उन्होंने मुझसे कहा, ''ब्रह्मचारी 'न' इस बारे में कुछ जानते नहीं। स्वामी शंकरानन्द जी महाराज बहुत तपस्वी हैं। वे रात को मच्छरदानी लगाना पसन्द नहीं करते। इसलिए हम प्रतिदिन शाम को मच्छर मारने के लिए स्प्रे करते हैं। यह कोलकाता केमिकल कम्पनी द्वारा निर्मित निप्पो स्प्रे है। कमरे के सभी मच्छर भाग जायें या मर जायें, तब तक उसका छिड़काव किया जाता है। दूसरे मच्छर कमरे में न घुसें, इसलिए खिड़कियाँ बन्द कर दी जाती हैं। यह रहस्यमयी सुगन्ध स्प्रे की है, जो अगरबत्ती की सुगन्ध से मिलकर मधुर हो जाती है! पूरा कमरा सुगन्ध से भरा रहने के कारण कपड़े भी सुगन्धित हो जाते हैं।''

तो यह था स्वामी शंकरानन्द जी महाराज के कमरे की सुगन्ध का रहस्य !

इस प्रकार स्वामी शंकरानन्द जी महाराज के कमरे की रहस्यमयी सुगन्ध की समस्या का समाधान हुआ। इस घटना से सिद्ध होता है कि बिना परीक्षण किये कोई निर्णय लेने से स्वाभाविक घटनाएँ भी चमत्कार जैसी लगती हैं।

स्वामी शान्तानन्द जी महाराज के कुछ संस्मरण

स्वामी शान्तानन्द जी महाराज (१८८४-१९७४) श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य थे। रामकृष्ण संघ के साधु उन्हें आध्यात्मिक जगत के अत्युच्च स्तर के संन्यासी के रूप में श्रद्धा करते थे। जब मैंने प्रथम बार उन्हें बेलूड़ मठ में देखा; तब उनकी आयु लगभग सत्तर वर्ष से अधिक थी। वे बेलुड़ मठ के प्रेमानन्द मेमोरियल भवन के प्रथम मंजिल के एक छोटे-से कमरे में रहते थे। उन्हें वृद्धावस्था सम्बन्धी बीमारियाँ थीं। इसलिए उनकी सेवा-शुश्रूषा के लिए एक युवा संन्यासी थे; जो उनके पास वाले कमरे में रहते थे।

स्वामी शान्तानन्द

स्वामी शान्तानन्द जी महाराज स्वभाव से बहुत विनम्र और मितभाषी थे। अल्पभाषी होने पर भी उनके संत स्वभाव से भक्त आकर्षित होते थे। कुछ भक्त प्रतिदिन उनका दर्शन करने आते थे। दोपहर में उन्हें पुस्तक पढ़कर सुनाई जाती थी और महाराज कुर्सी पर बैठकर शान्तभाव से सुनते थे। विशेष रूप से उन्हें श्रीरामकृष्ण-वचनामृत को सुनना पसन्द था। यह पुस्तक प्रतिदिन पढ़ी जाती थी। कई बार पढ़ने के कारण महाराज को यह पुस्तक सम्पूर्ण रूप से याद थी। जब कभी पाठक कोई गलती करता, तो महाराज उसे स्नेह से सुधार देते थे।

एक दिन श्रीरामकृष्ण-वचनामृत के पाठ में अनाहत-ध्वनि का प्रसंग आया। यह अलौकिक ध्वनि है, जिसे केवल योगी अपने अन्त:करण में सुनते हैं। श्रीरामकृष्ण कहते हैं, ''अनाहत शब्द सदा स्वयं ही हो रहा है। वह प्रणव-ओंकार की ध्वनि है, वह परब्रह्म से आती है, योगी इसे सुनते हैं। विषयी जीवों को यह ध्वनि नहीं सुनाई पड़ती। योगी जानते हैं कि वह ध्वनि एक ओर तो नाभि-कमल से उठती है और दूसरी ओर उस क्षीरसिन्धु-शायी परब्रह्म से।''

महाराज के कमरे में पाठक के अतिरिक्त तीन-चार अन्य भक्त भी थे। एक ने कहा, ''प्राचीन अनुभूतिसम्पन्न ऋषि इस अनाहत-ध्वनि को सुनते थे। लेकिन क्या अभी भी कोई इसे सुनता है?''

स्वामी शान्तानन्द जी महाराज अपनी अनुभूतियों के बारे में विरले ही कहते थे। उन्होंने अचानक मौन तोड़ते हुए धीरे से कहा, ''हाँ, उस ध्वनि को सुना जा सकता है, मैं अभी उस ध्वनि को सुन रहा हूँ।''

एक अन्य घटना। मैं एक सच्चे आध्यात्मिक जिज्ञासू को जानता था। वे प्रतिदिन बिना व्यतिक्रम बेलूड़ मठ आते थे। वे मन्दिर में प्रणाम करने के बाद स्वामी शान्तानन्द जी महाराज के दर्शन करने जाते थे, जिन्हें वे बहुत श्रद्धा करते थे।

वे घर जाने के पहले कार्यालय में कभी-कभी मुझसे भेंट करने आते थे। एक दिन उन्होंने मुझसे कहा, ''महाराज, मैं मन्त्र-दीक्षा लेना चाहता हूँ।''

मैंने कहा, ''आप हमारे संघाध्यक्ष महाराज के कार्यालय में जाइये। बेलूड़ मठ में केवल हमारे संघाध्यक्ष स्वामी वीरेश्वरानन्द जी महाराज ही दीक्षा देते हैं। लेकिन इसके पहले आपको उनके सचिव से सम्पर्क करना होगा। वे आपकी दीक्षा की व्यवस्था करेंगे।''

स्वामी वीरेश्वरानन्द

वे सज्जन महाराज के सचिव के पास गये। सचिव महाराज ने उन्हें एक आवेदन-पत्र भरने के लिए दिया। यह आवेदन-पत्र दीक्षार्थी की व्यक्तिगत जानकारी के लिये होता है। लेकिन वे आवेदन-पत्र की बात से ही वापस चले गये। वीरेश्वरानन्दजी महाराज से दीक्षा के पहले उनकी भेंट होगी, ऐसी उनकी अपेक्षा थी।

उन्होंने वापस आकर सारी घटना बताई। दीक्षा के लिये पुन: वहाँ जाने की उनकी प्रबल इच्छा नहीं थी।

मैंने उनसे कहा, ''इतनी छोटी-सी औपचारिकता के लिये आपको वापस नहीं आना चाहिए था। स्वामी वीरेश्वरानन्द जी महाराज बहुत वृद्ध हैं तथा उनके पास बहुत से दीक्षार्थी आते हैं। यदि उन सबसे उन्हें व्यक्तिगत रूप से मिलना पड़े, तो उन्हें बहुत कष्ट होगा । उससे बचाने के लिए इस आवेदन-पत्र को भरा जाता है। महाराज सभी आवेदन-पत्र को स्वयं देखकर दीक्षा देने का निर्णय लेते हैं। वे कृपापूर्वक सभी दीक्षार्थियों की प्रार्थना स्वीकार करते हैं। अत: मैं आपसे

कहता हूँ कि आप पुन: महाराज के कार्यालय में जाइये।''

लेकिन वे अभी भी वहाँ जाना नहीं चाहते थे। इसके बाद वे स्वामी शान्तानन्द जी महाराज को प्रणाम करने उनके कमरे में गये। आश्चर्य की बात है कि वे इसके पहले जब भी महाराज से मिलने जाते थे, उन्होंने कभी उनसे बात नहीं की थी । लेकिन उस दिन महाराज ने अचानक उनसे पूछा, ''क्या तुम्हारी दीक्षा हुई है?''

उन्होंने कहा, ''नहीं, महाराज।''

महाराज ने कहा, - ''तुम्हें दीक्षा ले लेनी चाहिए।''

उन्होंने आग्रहपूर्वक पूछा, - ''क्या आप मुझे दीक्षा देंगे?''

महाराज ने कहा, ''मैं दीक्षा नहीं देता। तुम प्रभु महाराज (स्वामी वीरेश्वरानन्द जी महाराज) के पास जाओ। वे तुम्हें दीक्षा देंगे।''

शान्तानन्दजी को प्रणाम करने के बाद वे सज्जन सीधे मेरे पास आये। वे रो रहे थे। रूँधे हुए कंठ से उन्होंने मुझसे कहा, ''महाराज, स्वामी शान्तानन्द जी महाराज ने मेरे प्रबल अहंकार को चूर-चूर कर दिया।'' उसके बाद उन्होंने अश्रुपूर्ण नेत्रों से स्वामी शान्तानन्द जी महाराज के साथ घटी घटना को बताया।

वे पुन: स्वामी वीरेश्वरानन्द जी महाराज के पास गये और दीक्षा प्राप्त कर धन्य हुए।

किसी को आश्चर्य हो सकता है कि क्यों स्वामी शान्तानन्द जी महाराज, जो पहले उनसे बात नहीं कर रहे थे, अचानक दीक्षा के लिए उनसे पूछा? क्या वे किसी के मन की बात जान लेते थे? क्या वे सिद्धि जानते थे? मेरे विचार से वे कभी इस प्रकार की शक्ति का उपयोग नहीं करते थे। भगवान श्रीरामकृष्ण देव भक्तों पर कृपा करने के लिए कभी-कभी पवित्र महापुरुषों को एक माध्यम के रूप में उपयोग करते हैं। स्वामी शान्तानन्द जी महाराज ऐसे ही एक पवित्र माध्यम थे। वे शब्द जो उनके मुख से निकले, वे किसी दूसरे के नहीं, बल्कि श्रीरामकृष्ण के ही थे। **(क्रमशः)**

जो व्यक्ति स्वयं से घृणा करने लगा है, उसके पतन का द्वार खुल चुका है और यही बात राष्ट्र के सम्बन्ध में भी सत्य है । हमारा पहला कर्तव्य है कि हम अपने प्रति घृणा न करें, क्योंकि आगे बढ़ने के लिए यह आवश्यक है कि पहले हम स्वयं में विश्वास रखें और फिर ईश्वर में ।

– स्वामी विवेकानन्द

मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

३०५. जिसे राम राखै, उसे कौन मारै?
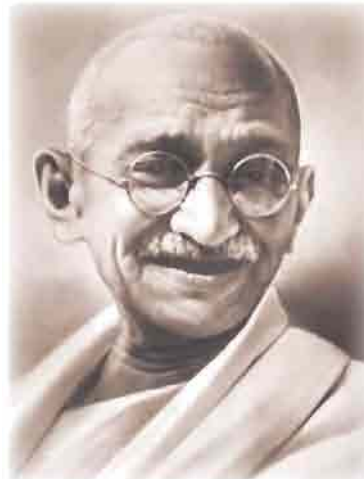
महात्मा गाँधी के चरित्र की श्रेष्ठता तथा आदर्शों से प्रभावित हो दक्षिण अफ्रिका में क्लैन बेक नामक एक व्यक्ति उनका मित्र बन गया था। वह बापू के साथ हमेशा रहता था, कभी उनका साथ नहीं छोड़ता था। एक दिन उसके पास एक पिस्तौल देख गाँधीजी ने पूछा, ''इस पिस्तौल को अपने पास क्यों रखा है?'' क्लेन बेक ने जवाब दिया, ''मैंने सुना है कि यहाँ कुछ लोग आपकी जान लेने को उतारू हैं। आपकी रक्षा के लिये इसे मैं अपने पास रखता हूँ।''

यह सुनते ही बापू हँस पड़े। उन्होंने कहा, 'मैं तो प्रभु श्रीराम को ही अपना रक्षक समझता था। अब आप मेरे रक्षक हो गए। इसीलिए मैं आपको नमन करता हूँ।'' यह कहकर उन्होंने दोनों हाथ जोड़ दिए। मित्र झेंप गया, बोला, ''आप गलत सोच रहे हैं। मित्र का कर्तव्य है कि वह अपने मित्र की रक्षा करे और सुख-दुख में साथ दे।''

'तो ध्यान से सुनो' बापू ने कहा, ''मैंने अपने को प्रभु राम को सौंप दिया है। मुझे उन पर पूरा विश्वास है। भगवान की इच्छा के बिना कुछ नहीं होता। श्रीराम जब चाहेंगे, मुझे उठा लेंगे।'' क्लेन बैक समझ गया कि गाँधीजी की भगवान राम पर पूर्ण श्रद्धा है, इसलिए उन्हें मृत्यु का जरा भी डर नहीं है। उसने गाँधीजी से क्षमा माँगी और उस दिन से उसने साथ में पिस्तौल रखना बन्द कर दिया।

मनुष्य मरणशील है। उसकी एक-न-एक दिन मृत्यु होनी ही है। किन्तु स्वधर्म का पालन करनेवालों को मृत्यु का भय और चिन्ता नहीं रहती। वे जीवन को आनन्द और मृत्यु को विश्राम मानते हैं। वे मृत्यु को प्रभु की इच्छा मानकर उसका सहर्ष स्वागत करते हैं। ○○○

आत्मबोध

श्रीशंकराचार्य

(अनुवाद : स्वामी विदेहात्मानन्द)

निषिध्य निखिलोपाधीन् नेति नेतीति वाक्यतः ।
विद्यादैक्यं महावाक्यैर्जीवात्मपरमात्मनोः ।।३०।।

पदच्छेद – *निषिध्य निखिल उपाधीन्, नेति नेति इति वाक्यतः विद्यात् ऐक्यम् महावाक्यैः जीवात्म-परमात्मनोः ।*

अन्वयार्थ – **नेति नेति** 'नेति-नेति' (यह नहीं, यह नहीं) **इति वाक्यतः** ऐसे वाक्यों से **निखिल** समस्त **उपाधीन्** उपाधियों का **निषिध्य** निषेध करके **महावाक्यैः** महावाक्यों के द्वारा **जीवात्म-परमात्मनोः** जीवात्मा तथा परमात्मा के **ऐक्यम्** एकता को **विद्यात्** जान लेना चाहिये ।

श्लोकार्थ – 'नेति नेति' आदि श्रुति-वाक्यों के द्वारा सभी उपाधियों का निषेध करके महावाक्यों के द्वारा लक्षित जीवात्मा तथा परमात्मा की एकता को जान लेना चाहिये ।

आविद्यकं शरीरादि दृश्यं बुद्बुदवत्क्षरम् ।
एतद्विलक्षणं विद्यादहं ब्रह्मेति निर्मलम् ।।३१।।

पदच्छेद – *आविद्यकम् शरीरादि दृश्यम् बुद्बुदवत् क्षरम् एतत् विलक्षणम् विद्यात् अहम् ब्रह्म इति निर्मलम् ।*

अन्वयार्थ – **आविद्यकम्** अविद्या से उत्पन्न **शरीर-आदि** शरीर आदि **दृश्यम्** दृश्य पदार्थ हैं (तथा) **बुद्बुदवत्** बुलबुलों के समान **क्षरम्** नश्वर हैं, **विद्यात्** जानो कि **अहम्** मैं **एतत्** इनसे **विलक्षणम्** भिन्न **निर्मलम्** निर्मल **ब्रह्म इति** ब्रह्म हूँ ।

श्लोकार्थ – अविद्या से उत्पन्न शरीर आदि दृश्य पदार्थ हैं तथा पानी के बुलबुलों की भाँति नाशवान हैं । ऐसा जानो कि मैं इनसे भिन्न निर्मल ब्रह्म तत्त्व हूँ ।

देहान्यत्वान्न मे जन्म जराकार्श्यलयादयः ।
शब्दादिविषयैः सङ्गो निरिन्द्रियतया न च ।।३२।।

पदच्छेद – देह *अन्यत्वात् न मे जन्म-जरा-कार्श्य-लयादयः शब्दादि-विषयैः सङ्गो निरिन्द्रियतया न च ।*

अन्वयार्थ – **देह-अन्यत्वात्** देह से भिन्न होने के कारण **मे** मुझमें **जन्म-** जन्म **जरा-** वार्धक्य **कार्श्य-** क्षय **लय-** मृत्यु **आदयः** आदि **न** नहीं है; **च** और **निरिन्द्रियतया** इन्द्रियों से रहित होने के कारण (मैं) **शब्द-आदि-** शब्द आदि **विषयैः** विषयों से **न सङ्गो** निर्लिप्त हूँ ।

अन्वयार्थ – देह से भिन्न होने के कारण मुझमें जन्म बुढ़ापा, क्षय, मृत्यु आदि नहीं है; और इन्द्रियों से रहित होने के कारण मैं शब्द आदि विषयों से निर्लिप्त हूँ ।

अमनस्त्वान्न मे दुःखरागद्वेषभयादयः ।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्र इत्यादि
श्रुतिशासनात् ।।३३।

पदच्छेद – *अमनस्त्वात् न मे दुःख-राग-द्वेष-भयादयः अप्राणः हि अमनाः शुभ्र इत्यादि श्रुति-शासनात् ।*

अन्वयार्थ – **अमनस्त्वात्** मन से रहित होने के कारण **मे** मुझमें **दुःख-** दुख **राग-द्वेष-** राग-द्वेष (तथा) **भय-आदयः** भय आदि **न** नहीं है; क्योंकि (वह आत्मा) **अप्राणः** प्राणरहित है **हि अमनाः** मनरहित है **शुभ्र** शुद्ध है, **इत्यादि** इत्यादि **श्रुति-शासनात्** श्रुतिवाक्य है ।

श्लोकार्थ – श्रुति (मुण्डक.,२.१.२) कहती है कि वह आत्मा 'प्राणरहित, मनरहित और शुद्ध' है । मन से रहित होने के कारण मुझमें दुःख, राग-द्वेष तथा भय आदि नहीं है ।

निर्गुणो निष्क्रियो नित्यो निर्विकल्पो निरञ्जनः ।
निर्विकारो निराकारो नित्यमुक्तोऽस्मि
निर्मलः ।।३४

पदच्छेद – *निर्गुणः निष्क्रियः नित्यः निर्विकल्पः निरञ्जनः निर्विकारः निराकारः नित्यमुक्तः अस्मि निर्मलः ।*

अन्वयार्थ – (मैं) **निर्गुणः** निर्गुण **निष्क्रियः** क्रियारहित **नित्यः** नित्य **निर्विकल्पः** विकल्परहित **निरञ्जनः** निरंजन **निर्विकारः** विकाररहित **निराकारः** आकाररहित, **नित्यमुक्तः** नित्यमुक्त (तथा) **निर्मलः** निर्मल **अस्मि** हूँ ।

श्लोकार्थ – मैं निर्गुण, क्रियारहित, नित्य, विकल्परहित, निरंजन, विकाररहित, आकाररहित, नित्यमुक्त तथा निर्मल हूँ ।

भारतीय चिन्तन की देव-दृष्टि : एक ऐतिहासिक पर्यालोचन

राजलक्ष्मी वर्मा

प्राध्यापिका, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

(गतांक से आगे)

श्रीराम और श्रीकृष्ण की कथा अत्यन्त प्राचीन काल से भारतवर्ष की राष्ट्रीय स्मृति में सुरक्षित है। वाल्मीकि रामायण भारत का प्रथम या आदिकाव्य है। रामायण और महाभारत-ये दोनों ही काव्य 'उपजीव्यकाव्य' कहे जाते हैं, अर्थात् इनमें वर्णित कथाएँ और आख्यान भारतीय साहित्य की विषयवस्तु बनते रहे हैं। वाल्मीकि रामायण के नायक श्रीराम की जीवनगाथा और महाभारत तथा श्रीमद्‌भागवत में वर्णित श्रीकृष्ण का जीवन और चरित्र असंख्य साहित्यिक कृतियों का आधार है। श्रीराम और श्रीकृष्ण की ऐतिहासिक स्थिति क्या थी, वे कब ईश्वर के अवतार रूप में प्रतिष्ठित हुए, इस बात का विशेष महत्त्व नहीं है, क्योंकि भारतीय चिन्तन में वे व्यक्तिविशेष के रूप में मान्य नहीं हैं, अपितु वे एक जीवनमूल्य, एक जीवनादर्श का रूप ले चुके हैं और भारतीय साहित्य में 'रस' बनकर व्याप्त हैं। ईश्वर के सगुण रूप में वे जनमानस से इतने एकात्म हो चुके हैं कि उसकी कल्पना में सजकर उसके साहित्य, शिल्प और कला का शृंगार बन गये हैं, लोकगीतों में ढलकर उसके कण्ठ में गूँजते रहते हैं।

सातवीं-आठवीं शताब्दी के लगभग जब जैन धर्म दक्षिण भारत में सिमट कर रह गया था और उत्तर भारत में बौद्ध धर्म का प्रभाव शिथिल होने लगा था, तब कुमारिल भट्ट, मण्डन मिश्र और शंकराचार्य वैदिक धर्म की पुन: प्रतिष्ठा के लिए गम्भीर प्रयत्न कर रहे थे, भारत की दार्शनिक-धार्मिक चेतना इन बदलती हुई परिस्थितियों में एक बार फिर अपना स्वरूप स्थिर करने का प्रयत्न कर रही थी। ईश्वरविषयक चिन्तन में भी अनेक प्रवृत्तियाँ कार्य कर रही थीं। एक ओर कुमारिल भट्ट आदि मीमांसक वैदिक कर्मकाण्ड अर्थात् यज्ञीय संस्कृति की पुन:प्रतिष्ठा के लिए प्रयत्नशील थे और दूसरी ओर शंकराचार्य वैदिक चिन्तन के ज्ञानकाण्ड अर्थात् औपनिषद दर्शन की स्थापना के लिए संघर्षरत थे। बौद्धों के तथाकथित अनात्मवाद और अनीश्वरवाद का खण्डन करते हुए शंकराचार्य ने उपनिषदों में प्रतिपादित निर्गुण-निराकार आत्मतत्त्व की प्रतिष्ठा की। कुमारिल भट्ट जैसे मीमांसकों की कर्म-निष्ठा और आत्मानुभूति-सम्पन्न शंकराचार्य की तार्किक दक्षता से वैदिक धर्म भारत में पुन: प्रतिष्ठित होने लगा। प्राय: इसी समय ईश्वर के सगुण रूप के उपासक दक्षिण के आलवार भक्त-सन्तों की अनुरागात्मिका भक्ति और औपनिषद दर्शन के समन्वय से वैष्णव भक्ति-दर्शन की परम्परा का सूत्रपात भी हुआ। श्रीनाथमुनि और यामुनाचार्य की परम्परा में अवतीर्ण हुए दशम शताब्दी के महान वैष्णव आचार्य श्रीरामानुज ने शंकराचार्य के निर्गुण-मत का खण्डन करते हुए सगुण ईश्वर को ही परात्पर परब्रह्म स्वीकार किया और ज्ञान तथा कर्म से स्वतन्त्र भक्ति-पथ 'प्रपत्तिमार्ग' का प्रवर्तन किया। 'प्रपत्ति' का अर्थ शरणागति होता है।

रामानुजाचार्य से ही द्वैतसंवलित अद्वैत दर्शन की परम्परा प्रारम्भ हो गयी और क्रमश: मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य, वल्लभाचार्य और श्रीकृष्णचैतन्य के सिद्धान्तों तथा साधनामार्गों के द्वारा उत्तरोत्तर पुष्ट और समृद्धिसम्पन्न होती चली गयी। श्रीचैतन्य के अतिरिक्त उपर्युक्त सभी आचार्यों ने बादरायण सूत्रों पर भाष्य-रचना की और अपने-अपने मतों को उपनिषद्-मूलक सिद्ध किया। चूँकि ये सभी मत सगुण ब्रह्म को ही परमसत्ता स्वीकार करते थे, अत: इनमें ज्ञान और कर्म के साथ-साथ भक्ति का महत्त्वपूर्ण स्थान था, और परवर्ती आचार्यों ने तो भगवान की अहैतुकी भक्ति को ही ईश्वरप्राप्ति का सर्वोत्कृष्ट और एकमात्र साधन माना। इन मतों में विष्णु के अवतार श्रीराम और श्रीकृष्ण अपनी-अपनी शक्तियों के साथ परब्रह्मरूप में प्रतिष्ठित हुए। रामानुजाचार्य और मध्वाचार्य ने नारायण और लक्ष्मी को इष्ट स्वीकार किया तथा वल्लभाचार्य और श्रीचैतन्य ने राधाकृष्ण को परात्पर सत्ता की अभिव्यक्ति माना। शिव और शक्ति को परमसत्ता स्वीकार कर शैवदर्शन और शाक्तदर्शन की भी प्रतिष्ठा हुई। ये सभी दर्शन 'द्वैतसहिष्णु अद्वैत' की विचारधारा के पोषक थे।

इन विभिन्न दार्शनिक मतवादों और साधना प्रक्रियाओं की सिद्धि में प्रभूत साहित्य रचा गया। बौद्धों और वैदिक

मतानुयायियों के बीच और शंकराचार्य के द्वारा प्रतिपादित अद्वैत सम्प्रदाय तथा वैष्णव सम्प्रदायों के बीच जो शास्त्रार्थ और खण्डन-मण्डन प्रारम्भ हुआ, उसके कारण नवम शताब्दी से लगभग सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी तक विलक्षण प्रतिभा के धनी विद्वानों के द्वारा प्रचुर मात्रा में ऐसे गम्भीर दार्शनिक साहित्य की रचना हुई, जिस पर भारत गर्व कर सकता है। नास्तिक सम्प्रदाय कहे जाने वाले बौद्ध और जैन दर्शनों के बीच भी वैचारिक संघर्ष हुआ और इनकी परम्परा में भी तत्त्वचिन्तन और तार्किक क्षमताओं से सम्पन्न विद्वानों ने अद्भुत ग्रन्थरत्नों की सृष्टि की। सिद्धान्तों के इस पारस्परिक संघर्ष ने भारत की बौद्धिक सम्पदा को असाधारण रूप से अनेक आयामों में समृद्ध किया है।

मध्ययुग के वैदिक मतानुयायी वर्णाश्रम-धर्म के नियमों से बँधे थे, अत: परम्परानिष्ठ आचार-मार्गों में 'त्रिवर्ण' के ही अधिकार की मर्यादा को अस्वीकार नहीं कर सके। वर्णाश्रम-धर्म, जो वैदिक चिन्तन का व्यक्ति और समाज की सर्वांगीण उन्नति का सोचा-समझा वैज्ञानिक उपाय था और वर्ण का आधार व्यक्ति की स्वाभाविक प्रवृत्ति और क्षमता को ही मानता था, इस युग तक आते-आते भेदभावमयी कुत्सित जातिप्रथा में बदल चुका था । अत: इन सभी सम्प्रदायों ने जन-जन के कल्याण के लिए भक्तिरूपी मार्ग प्रशस्त किया, जो भावरूपिणी होने के कारण सभी स्थूल विधि-निषेधों से स्वतंत्र थी। इसमें अपेक्षा थी केवल प्रेम और विश्वास की जो हर हृदय को सहज उपलब्ध होते हैं। फिर भक्तिमार्ग का आलम्बन ईश्वर का सगुण-साकार रूप है जो स्वाभाविक रूप से सामान्य जन के लिए अधिक बोधगम्य और ग्राह्य था, फलत: गहन साधना और तप की अपेक्षा रखने वाले ज्ञानमार्ग और अनासक्ति की अपेक्षा रखने वाले निष्काम कर्ममार्ग की तुलना में भक्तिमार्ग समाज में अधिक लोकप्रिय होने लगा।

मध्यकाल में इस्लाम के बढ़ते प्रभाव के कारण वैदिक सनातन धर्म और इस्लाम के बीच संघर्ष की स्थिति बनने लगी थी, हिन्दुओं की उन्मुक्त धर्माचरण की स्वतंत्रता भी बाधित होने लगी थी। शासकों की रीति-नीति विजित जाति को प्रभावित करती ही है, इस्लाम भी अव्यक्त रूप से हिन्दू धर्म को प्रभावित करने लगा था। सामाजिक समरसता स्थापित करने के लिए और सामान्य जनता में धर्म का प्रचार-प्रसार करने के लिए, साथ ही क्षत-विक्षत होते हिन्दू धर्म को स्थिरता और सुदृढ़ता देने के लिए भारत की धार्मिक चेतना का एक नया अवतार हुआ। इस नये अवतार के पुरस्कर्ता आचार्य नहीं थे, अपितु वे सन्त-कवि थे, जिन्होंने अपने काव्य के द्वारा एक नवीन समन्वयात्मक धार्मिक वातावरण की सृष्टि की। इस दृष्टि से सन्तकाव्य, रामकाव्य और कृष्णकाव्य का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहा।

इनमें से सन्तमत में ईश्वर का निर्गुण-निराकार रूप मान्य हुआ और रामकाव्य और कृष्णकाव्य में ईश्वर का सगुण-साकार रूप। सन्तमत के प्रमुख कवि कबीरदास हैं, जिन्होंने हिन्दू और इस्लाम धर्म की मूलभूत बातों को लेकर सन्तमत की प्रस्तावना की। दो धर्मों के बीच संघर्ष प्राय: कर्मकाण्ड को लेकर होता है, कबीर ने कर्मकाण्ड की सर्वथा उपेक्षा कर ईश्वर की मानसिक भक्ति को ही धर्म का स्वरूप माना। कबीर का ईश्वर निर्विकार, निराकार, अजन्मा और अरूप है; ऐसे ईश्वर को मूर्ति और अवतार में सीमित करना उसकी सर्वव्यापकता पर प्रश्नचिह्न लगाना है। कबीर ने अपनी सीधी सरल लोकभाषा में जनता के बीच जिस धर्म का प्रतिपादन किया, उसके लिए मंत्र, अभिचार, माला या तीर्थाटन की आवश्यकता नहीं है। धर्म का प्रधान अंग विश्वास और भक्ति है। विश्वास का सम्बन्ध ईश्वर की सर्वव्यापकता और सर्वशक्तिमत्ता से है और भक्ति का सम्बन्ध हृदय की निश्छल प्रेमानुरक्ति से है। कबीर की ईश्वर-भावना वही है, जो उपनिषदों में प्रतिपादित है और जो शंकराचार्य के केवलाद्वैत मत में मान्य है। किन्तु **'जाके मुख माथा नहीं, नाहीं रूप अरूप, पुहुपबास से पातरा, ऐसा तत्त अनूप'** – जैसे निराकार ईश्वर की भक्ति कैसे सम्भव है? भक्ति तो व्यक्तित्व का आश्रय लेती है, प्रेमी और प्रेमास्पद के द्वैत की उसे अपेक्षा होती है । अत: मूर्तिपूजा और अवतारों में विश्वास न करने वाले कबीर ने प्रतीकों का आश्रय लिया। उन्होंने ब्रह्म से मानसिक सम्बन्ध जोड़ा और गुरु, राजा, पिता-माता, स्वामी-मित्र और पति के रूप में उसे देखा। सगुण भक्ति में प्रचलित ईश्वर के सभी नामों यथा – राम, हरि, केशव, मुरारी, विट्ठल, सारंगपाणि, गोविन्द आदि को कबीर ने अपनी निराकारोपासना में सहज रूप से निस्संकोच स्वीकार किया। क्योंकि सामान्य जनता का इन्हीं नामों से परिचय और अनुराग था। कबीर के पश्चात् उनके प्रधान शिष्य धरमदास और गुरुनानक, दादूदयाल, सुन्दरदास, मलूकदास आदि अनेक सन्त-कवियों ने ईश्वर के निर्गुण-निराकार स्वरूप की भक्ति का अपने काव्य के माध्यम से प्रचार किया तथा मूर्तिपूजा सहित बाह्य कर्मकाण्ड की निन्दा की। **(क्रमशः)**

आधुनिक मानव शान्ति की खोज में (८)

स्वामी निखिलेश्वरानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन, वड़ोदरा

४. जो जस करइ सो तस फलु चाखा

जब जीवन में कोई अकल्पनीय विपत्ति आ जाती है, तब सामान्य रूप से प्रत्येक मनुष्य के मन में प्रश्न उठता है कि जीवन में इतना दुख क्यों है? भगवान दयालु हैं, सर्वशक्तिमान हैं, तो वे दया करके मनुष्यों के दुख दूर क्यों नहीं कर देते हैं? राजकुमार सिद्धार्थ के मन में भी यह प्रश्न उठा था, "जगत में इतना दुख क्यों है?" इस प्रश्न के समाधान के लिये उन्होंने महाभिनिष्क्रमण किया, तप किया और प्रश्नों के समाधान प्राप्त करके बुद्ध बने। इन प्रश्नों के समाधान के लिये हमें भी उस स्थिति में पहुँचना पड़ेगा। क्योंकि हमारा छोटा-सा मन अनन्त और असीम भगवान के कार्यों को कैसे समझ सकता है? पॉल डेविस ने "The Mind of God" नामक पुस्तक में लिखा है कि इस सीमित मन से भगवान के मन को नहीं जान सकते हैं। समाधि की अवस्था में मन जब परम शान्त हो जाय, तब ईश्वर के मन को समझ सकते हैं। किन्तु सभी लोग तो समाधि की अवस्था में नहीं जा सकते हैं, तो क्या ईश्वर के कार्यों और जीवन में आनेवाले दुखों को कभी भी नहीं समझ सकते हैं?

नहीं, ऐसा नहीं है। जीवन में आने वाले दुखों और आघातों को समझने के लिये मानसिक जगत में एक अटल नियम है। इस नियम को जान लेने से दुखों के प्रश्नों को थोड़ा-बहुत समझ सकते हैं। उस नियम को 'श्रीरामचरितमानस' में तुलसीदास ने इस प्रकार वर्णन किया है – "जो जस करइ सो तस फलु चाखा।"- अर्थात् जैसा कर्म करोगे, वैसा फल मिलेगा। इस नियम को कर्म के सिद्धान्त के रूप में पहचाना जाता है।

जैसे भौतिक जगत में स्थूल पदार्थों के सम्बन्ध में गुरुत्वाकर्षण का नियम माना जाता है कि ऊपर फेंकने वाले पदार्थ के बीच में कोई अवरोध न आए, तो वह नीचे गिरता ही है। इसी प्रकार मानसिक जगत का नियम है कि जैसा कर्म करोगे, वैसा फल पाओगे ही – "जैसा करो वैसा पाओ।" भौतिक और मानसिक जगत के ये दोनों नियम अटल हैं। इसे कोई स्वीकार करे या न करे, किन्तु यह सत्य है। अच्छे कर्म करनेवाले को अच्छा फल मिलता है और बुरा कर्म करनेवाले को बुरा फल मिलता है। इसमें रिश्वत देकर कोई बच नहीं सकता है। तब एक प्रश्न उठता है कि सत्य का पालन करनेवाले प्रभु के भक्तों के जीवन में इतने दुख क्यों आते हैं, जबकि दुष्ट लोग सुखी दिखायी देते हैं। ऐसा क्यों होता है? इस विरोधाभास को समझने के लिये किस प्रकार के कर्म, कैसे फल देते हैं उसको जानना पड़ेगा।

तीन प्रकार के कर्म

१. क्रियमाण कर्म – भूखा मनुष्य भोजन कर ले, तो उसे तुरन्त तृप्ति मिल जाती है। कोई आग में हाथ डाले, तो तत्काल जल जाता है, जिस कर्म को करने से तत्काल फल मिलता है, वह है क्रियमाण कर्म।

२. संचित कर्म – जो क्रियमाण कर्म संचित होकर पुन: फल दे, वह है संचित कर्म। उदाहरण के रूप में कोई दान दे और उसके दान की सार्वजनिक प्रशंसा न हो, तो वह संचित कर्म हो गया। वह उसके खाते में जमा हो जाता है । किन्तु यदि सार्वजनिक प्रशंसा हो गई, तो वह क्रियमाण कर्म बन जाता है, जमा नहीं होता है।

३. प्रारब्ध कर्म – संचित कर्म जब फलरूप में आते हैं, तब वे प्रारब्ध कर्म बन जाते हैं। प्रारब्ध कर्म अर्थात् पूर्व में किया गया पुरुषार्थ। पहले किया गया पुरुषार्थ संचित कर्म के रूप में जमा होकर भाग्य के रूप में आता है। इसलिये जैसे कर्म किये होंगे, वैसा भाग्य बनता है। प्रत्येक को उसके संचित कर्म के अनुसार फल मिलता है। भगवान के सुपर कम्प्यूटर में सबका हिसाब लिखा होता है। प्रत्येक कर्म के अनुसार उसका फल निश्चित ही है। पर यह फल कब तक मिलेगा, वह पहले से नहीं जाना जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति का एक गुप्त खाता होता है, उसमें अच्छे

और बुरे कर्मों का फल जमा होता रहता है। इसमें ऐसा नहीं हो सकता है कि बुरे कर्मों का फल कुछ अच्छे कर्म करके मिटा दें। इस गुप्त खाते में दोनों प्रकार के फल जमा होते रहते हैं और उसी के अनुसार प्रत्येक को भोगना पड़ता है।

५. कर्म का फल कैसे मिलता है?

कर्म का फल जीवन में दो प्रकार से मिलता है, एक तो मन में संस्कार के रूप में और दूसरा विश्व में व्यापक रूप से। इसमें प्रथम के विषय में देखें, तो जैसे मन के संस्कार होते हैं, वैसे ही कार्य होते हैं। जो सत्कार्य करते हैं, स्वयं दुख उठाकर भी अन्य की सेवा करते हैं, उनके मन में अज्ञात रूप से ही इन सत्कार्यों की छाप पड़ती है। इसलिये मन में प्रसन्नता और उल्लास रहता है। मन की शक्ति बढ़ती है। मन अधिक-से-अधिक अच्छे कार्यों को करने के लिये उत्साहित रहता है। ये हैं सत्कार्य के संस्कार या उनका मन पर प्रभाव। सत्कार्यों के संस्कार से सद्बुद्धि आती है। सद्बुद्धि से अनेक शुभकार्य होते हैं, इस प्रकार शुभकार्यों का प्रमाण उत्तरोत्तर बढ़ता रहता है। इसके विपरीत बुरे कार्य करनेवाले के मन में खराब संस्कार पड़ते हैं। ये खराब संस्कार और अधिक बुरे कर्मों की ओर खींचते हैं। इससे मन में अशान्ति आती है, व्यग्रता आती है, असुरक्षा की भावना आती है। ऐसे मन का पतन होता जाता है, फिर ऐसा मनुष्य और अधिक दुष्कृत्य करता जाता है।

दूसरे प्रकार से कर्म का फल विश्व में व्यापक रूप से मिलता है। अच्छे कर्म करने वाले को भी कभी खराब फल नहीं मिलता है, वैसे ही खराब कर्म करनेवाले को कभी अच्छा फल नहीं मिलता है। तो फिर जगत में बुरे कर्म करने वाले सुखी क्यों हैं ?

दुष्ट लोग सुखी कैसे ?

इस प्रश्न के उत्तर के लिये हमें संचित कर्मों को देखना पड़ेगा। यदि किसी व्यक्ति के पूर्वजन्मों के संचित सत्कर्म के कारण उसका पुण्य का खाता अधिक समृद्ध हो, तो इस जन्म के खराब कर्म करने के बाद भी उसे दुख नहीं मिलता है, लेकिन जब उसके पुण्य खर्च हो जाते हैं, तब उसके कुकर्मों का फल मिलना प्रारम्भ हो जाता है और दुष्कर्मों का फल अवश्य मिलता है। कई बार सबूतों के अभाव में न्यायाधीश अपराधी को निर्दोष छोड़ देते हैं, पर वह भगवान के न्यायालय में कभी छूट नहीं सकता है। जब तक उसके पुण्य के खाते से पुण्य खर्च नहीं हो जाता, तब तक उसे दुख रूपी सजा नहीं होती है और तब तक अपराधी निर्दोष की तरह आराम से रहता है, पर पुण्य समाप्त होने के बाद किसी-न-किसी रूप में उसे कुकर्मों का फल भोगना ही पड़ता है।

परन्तु किस कर्म का फल कब, कितना मिलेगा, यह पहले से नहीं जाना जा सकता। दुष्कर्म और सत्कर्म दोनों के फल होते हैं, जितनी देर से मिले, उतना ही अच्छा है। इससे दुष्कर्मों के फल जितनी जल्दी भोग लिये जाएँ, उतना ही अच्छा है। नहीं तो, कर्म फल जमा होगा। उदाहरण के रूप में किसी को हमने एक तमाचा मारा और उसने बदले में हमें दो तमाचे मार दिये, तो यह तत्काल फल मिल गया। यदि तत्काल तमाचा न मिला और कर्मफल जमा हो गया, तो मानो चक्रवृद्धि ब्याज के साथ भविष्य में दस या अधिक तमाचे खाने पड़ें। इसी प्रकार सत्कर्मों का फल जितना देर से मिले उतना अच्छा, क्योंकि वह भी चक्रवृद्धि ब्याज के साथ मिलता है। उदाहरणार्थ, किसी ने सत्कर्म किया और सार्वजनिक रूप से प्रशंसा मिल गई, तो यह फल उसे तुरन्त मिल गया, पर यदि यह फल जमा हो गया हो, तो वर्षों बाद उसे उसकी मन की उच्च स्थिति के रूप में शुभ संस्कारों के रूप में मिलता है। जिसे सत्कर्मों के फल की बिलकुल आशा नहीं होती है, उसे दीर्घकाल में अनन्त सुख एवं परम शान्ति के रूप में फल मिलता है। इसलिये भगवान श्रीकृष्ण गीता में निष्काम कर्म करने को कहते हैं। वे कहते हैं – **कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन** – कर्म करने का तुम्हारा अधिकार है, फल की इच्छा मत रखो। फल की इच्छा के लिये कर्म करने वालों को वे 'कृपणाः फलहेतवः' कहते हैं, अर्थात् जो फल का हेतु रखकर कर्म करते हैं, वे कृपण अर्थात् दीन हैं। इसलिये कर्मों के बंधन से यदि मुक्त होना हो, तो फल की आशा रखे बिना कर्म करना चाहिये। उसका अनन्त फल मिलता है। **(क्रमशः)**

आत्मविश्वास का आदर्श ही हमारी सबसे अधिक सहायता कर सकता है । यदि इस आत्मविश्वास का और भी अच्छे प्रकार से प्रचार होता और यह कार्यरूप में परिणत हो जाता, तो मेरा दृढ़ विश्वास है कि जगत में जितना दुख और अशुभ है, उसका अधिकांश गायब हो जाता ।

– स्वामी विवेकानन्द

भारत की ऋषि परम्परा (१६)

स्वामी सत्यमयानन्द

परशुराम

परशुराम जी भगवान विष्णु के छठे अवतार माने जाते हैं। हाथ में परशु और धनुष, लम्बे केश-दाढ़ी, वल्कल वस्त्र धारण किए उनका चित्रण किया जाता है। परशुराम जी के पूर्व अवतार मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह और वामन थे। इसलिए कुछ आधुनिक विद्वान अवतारों के कला-विकास की दृष्टि से परशुराम तथा मानवीय सभ्यता का सूत्रपात, इन दोनों को जोड़ने का प्रयास करते हैं।

प्रत्येक युग में सत्ता हेतु जाति-वर्ण के बीच संघर्ष देखा जाता है। पुरा वैदिक काल में भी विद्या-सम्पन्न दरिद्र ब्राह्मणों और धन-सम्पन्न क्षत्रियों में संघर्ष था। क्षत्रियों में धन-सम्पत्ति के अतिरिक्त वेदों का भी ज्ञान था। दोनों वर्णों के बीच यह गुप्त कलह परशुरामजी के समय पराकाष्ठा पर पहुँचा। उन्होंने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियों से हीन कर दिया और ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को प्रतिपादित किया।

परशुरामजी ने बाल्यकाल में अपने पिता जमदग्नि के संरक्षण में वेदाध्ययन किया। उन्होंने धनुर्विद्या का भी अभ्यास किया। महर्षि भृगु के वंशज होने के कारण परशुरामजी को भार्गव भी कहा जाता है। उन्होंने हिमालय में अनेक वर्ष देवाधिदेव महादेव की आराधना की और वरदान के रूप में भगवान शिव ने उन्हें अपना परशु प्रदान किया। इसके पहले उनका नाम केवल राम था, भगवान शिव से परशु प्राप्त करने के बाद, उनका नाम परशुराम हुआ।

महादेव द्वारा प्रदत्त परशु और उनके आशीर्वाद से वे राक्षसों का संहार करने लगे। युद्ध में परशु ही उनका मुख्य शस्त्र था। उनके इस परशु के विषय में एक रोचक कथा है। महादेव ने प्रजापति दक्ष का यज्ञ ध्वंस करने के लिए अपना त्रिशूल फेंका। प्रत्यावर्तन के समय त्रिशूल बद्रिकाश्रम की ओर चला गया। वहाँ नर और नारायण तपस्या कर रहे थे। नारायण को त्रिशूल का आघात लगने से उन्होंने मन्त्रोच्चार किया और त्रिशूल भगवान शिव पर प्रहार करने के लिए आगे बड़ा। नर ऋषि ने भी मन्त्रोच्चार कर महादेव के ऊपर एक तिनका प्रक्षेपित किया। यह तिनका एक बड़े परशु के आकार में परिवर्तित हो गया। भगवान शिव ने दोनों प्रहारों को सहजता से निरस्त कर दिया। नर ऋषि ने अपनी भूल के लिए भगवान शिव से क्षमा माँगी और उनकी आराधना की। इस प्रकार भगवान शिव को परशु प्राप्त हुआ।
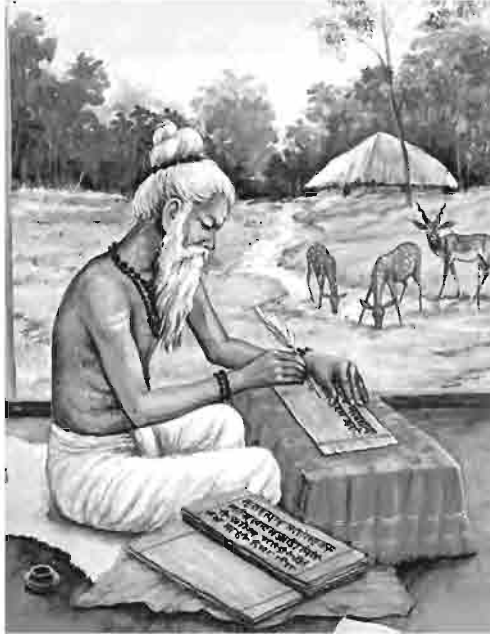
परशुराम के पिता जमदग्नि का कार्तवीर्य के पुत्रों ने वध कर दिया। परशुराम की माता रेणुका पति-वियोग के कारण विलाप करने लगीं और अठारह बार भूमि पर पछाड़ खाकर अपने पति की चिताग्नि में प्रवेश कर गईं। परशुराम ने इक्कीस (अथवा अठारह) बार प्रतिशोध लिया। इस कार्य में उनके चारों ज्येष्ठ भ्राताओं के सम्मिलित होने का कहीं उल्लेख प्राप्त नहीं होता। इस भयंकर नरसंहार के पश्चात्, इसके पाप से मुक्त होने के लिए उन्होंने कुरुक्षेत्र में देवताओं और पितरों से प्रार्थना की और प्रायश्चित्त हेतु एक यज्ञ किया। युद्ध में विजय से प्राप्त समस्त सम्पत्ति उन्होंने ब्राह्मणों को दान कर दी। कश्यपजी को उन्होंने समस्त पृथ्वी प्रदान की। इसके बाद वे तपस्या करने के लिए महेन्द्रगिरि पर चले गए।

परशुराम जी और श्रीराम के बीच दीर्घ समय-अन्तराल को न देखते हुए, यह स्मरण रखना होगा कि परशुराम को उनके पिता ने कुछ वरदान दिए थे, जिनमें से एक चिरंजीवी होने का था।

भगवान श्रीराम और परशुराम जी के मिलन की प्रसिद्ध कथा है। तब श्रीराम मिथिला से अयोध्या लौट रहे थे। परशुरामजी ने श्रीराम से कहा था कि उन्होंने भगवान शिव का धनुष तो तोड़ा है, क्या वे उनका यह विष्णु प्रदत्त धनुष खींच सकते हैं?'

परशुराम जी ने अपना भव्य धनुष श्रीराम को दिया।

श्रीराम ने तत्क्षण धनुष को ग्रहण कर प्रत्यंचा पर बाण रखा। श्रीराम ने उनसे पूछा कि वे अपना बाण कहाँ छोड़ें? परशुराम जी ने देखा कि श्रीरामचन्द्रजी को देखने के लिए सम्पूर्ण देवता, ऋषि ब्रह्माजी को आगे करके वहाँ एकत्र हो गए हैं। गन्धर्व, अप्सराएँ, सिद्ध, चारण, किन्नर, यक्ष, राक्षस और नाग भी उस अत्यन्त अद्भुत दृश्य को देखने के लिए वहाँ आ पहुँचे और सभी लोग आश्चर्य से जड़वत हो गए। श्रीरामचन्द्र जी ने वह उत्तम बाण छोड़ा और परशुराम जी के तपस्या द्वारा अर्जित सभी पुण्यलोक नष्ट कर दिए। परशुरामजी ने श्रीराम से क्षमायाचना कर उनकी परिक्रमा की। (वाल्मीकि रामायण)

परशुराम जी का क्षत्रिय कुल को संहार करने का प्रण और क्षत्रिय कुल में जन्मे श्रीराम और श्रीकृष्ण के साथ उनकी भेंट, इसमें कुछ विरोधाभास प्रतीत होता है। इसके बहुत समय बाद भगवान बुद्ध का भी जन्म क्षत्रिय कुल में हुआ था। इसके स्पष्टीकरण में यह कहा जाता है कि परशुराम जी ने केवल दुष्टों का वध किया था। इसके अलावा उन्हें अपने पितरों से यह आदेश प्राप्त हुआ था कि वे शेष क्षत्रिय वंश का संहार न करें। समाज के एक अविभाज्य अंग को समूल नष्ट कर देने से उसका दुष्परिणाम समूची सामाजिक व्यवस्था को भोगना पड़ता है। भगवद्गीता में वर्णन आता है कि 'सज्जनों के उद्धार और दुष्टों के नाश' हेतु ईश्वर प्रत्येक युग में अवतार ग्रहण करते हैं।

परशुराम जी की स्तुति रामायण और महाभारत महाकाव्यों के अलावा पुराणों में भी प्राप्त होती है। उन्होंने अपना शेष जीवन दक्षिण भारत के महेन्द्रपर्वत पर व्यतीत किया। महापराक्रमी अर्जुन भी वहाँ उनसे मिले थे। परशुराम को मलबार प्रदेश का निर्माता भी माना जाता है। एक कथा के अनुसार वरुणदेवता ने उन्हें यह भूमि प्रदान की थी। अन्य वर्णन के अनुसार परशुराम जी ने समुद्र को पीछे किया और पश्चिम पर्वतमाला का अपने परशु से छेदन किया।

महाभारत में परशुराम जी का वर्णन अनेक स्थानों पर प्राप्त होता है। महाभारत में उनकी सबसे प्रसिद्ध कथा कर्ण के विषय में मानी जाती है। बच्चे आज भी उस कथा को दुहराते है। कर्ण स्वयं को ब्राह्मण बताकर उनके पास गए और उनसे शस्त्र-विद्या ग्रहण की। शिक्षा के अन्तिम समय में परशुराम जी ने उन्हें अभेद्य ब्रह्मास्त्र चलाने की विद्या प्रदान की। एकदिन थकावट के कारण परशुराम जी विश्राम लेना चाहते थे। वे कर्ण की गोद में सिर रखकर सो गए। एक कीड़ा कर्ण की जंघा को काटने और कुतरने लगा। गुरु की निद्रा भंग न हो, इसलिए कर्ण अपने स्थान से नहीं हिले। वे दृढ़तापूर्वक निर्लिप्तभाव से घण्टों तक पीड़ा सहते रहे। उनका रक्त पहले तो धीरे-धीरे टपक रहा था, किन्तु धाराप्रवाह बहने के बाद भी वे अविचल बैठे रहे। रक्त का स्पर्श होने से परशुराम जी को कुछ भीगेपन का अनुभव हुआ और उनकी निद्रा भंग हुई। वे खड़े हो गए चकित होकर देखने लगे। कर्ण ने कीड़े को भगाया और विनम्र भाव से वे अपने गुरु के सम्मुख खड़े हो गए। परशुरामजी ने कहा, 'कोई भी ब्राह्मण इतनी शान्ति और तितिक्षापूर्वक यह पीड़ा सहन नहीं कर सकता। तुम ब्राह्मण नहीं हो।' जब कर्ण ने अपना सही परिचय बताया, तब परशुरामजी ने उन्हें इस छल के कारण शाप दिया, 'जब तुम्हें प्रचण्ड ब्रह्मास्त्र की आवश्यकता होगी, तब तुम इसके ज्ञान से वंचित हो जाओगे।' **(क्रमश:)**

जो शिव की सेवा करना चाहता है, उसे उनकी सन्तान की, विश्व के प्राणिमात्र की पहले सेवा करनी चाहिए । शास्त्रों में कहा भी गया है कि जो भगवान के दासों की सेवा करता है, वही भगवान का सर्वश्रेष्ठ दास है । यह बात सर्वदा ध्यान में रखनी चाहिए ।... नि:स्वार्थता ही धर्म की कसौटी है । जिसमें जितनी ही अधिक नि:स्वार्थता है, वह उतना ही आध्यात्मिक है तथा उतना ही शिव के समीप । चाहे वह पंडित हो या मूर्ख, शिव का सामीप्य दूसरों की अपेक्षा उसे ही प्राप्त है,...परन्तु इसके विपरीत यदि कोई मनुष्य स्वार्थी है, तो चाहे उसने संसार के सब मन्दिरों के ही दर्शन क्यों न किए हों, सारे तीर्थ क्यों न गया हो और रंग-भभूत रमाकर अपना मुख चीते जैसा क्यों न बना लिया हो, वह शिव से बहुत दूर है ।

– स्वामी विवेकानन्द

हिन्दू धर्म और सहयोग की भावना

भगिनी निवेदिता

(भगिनी निवेदिता की १५० वीं जन्म-जयन्ती के उपलक्ष्य में यह लेखमाला 'विवेक ज्योति' के पाठकों के लाभार्थ आरम्भ की गई है। – सं.)

ईसाई देशों में गत शताब्दी में पारस्परिक साहचर्य से महान कार्य हुए हैं। हिन्दू और मुस्लिम, दोनों समाजों को इस प्रकार के कार्यों की अत्यन्त आवश्यकता है। यह आवश्यक नहीं है कि वे ऐसे प्रत्येक विचारों का अनुकरण करें। किन्तु पाश्चात्य समाज के विचार को समझ कर उसे अपने अनुरूप अभिव्यक्त किया जा सकता है। पाश्चात्य जीवन और उसके विचारों के प्रभाव ने हमारी बहुमूल्य सामाजिक संरचना की रीतियों को ध्वस्त कर दिया है। हमारे पुराने ग्रामीण समाज की सम्बद्धता, नैतिक-अनुशासन, प्रयोजन-बोध तथा उच्चतम विचार व त्याग के प्रति उदारता की भावना नष्ट हो गई है। उसके बदले हमारे पास आधुनिक काल में शहर के रूप में बेमेल टुकड़ों का ढेर है ।

मध्य युग के नगर भी अपने उद्देश्यों की पूर्ति अपने ढंग से करते थे, जैसे आधुनिक स्वयंसेवी संस्थाएँ करती हैं। काशी अथवा प्रयाग में आने वाले अपरिचति व्यक्ति को तुरन्त अपना निवास प्राप्त हो जाता था । प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उसके प्रान्त के लोग भी उसे मिल जाते थे। वहाँ वह नवागन्तुक अपने मित्रों से मिलता, उनसे सहायता और परामर्श प्राप्त करता तथा अपनी स्थानीय संस्कृति का लाभ उठाता था। उसके प्रादेशिक परिजनों का वह मुहल्ला ही उसकी सारी इच्छाओं, उद्देश्यों, घर, चिकित्सा आदि का आधार बन जाता था। आधुनिक शहरों से भी श्रेष्ठतर सेवाएँ उसे वहाँ प्राप्त हो जाती थीं। इन प्रादेशिक संगठनों के द्वारा सामुदायिक भावना का विकास होता था, जो कालान्तर में नवीन सम्भावनाओं के विकास में सहायक होती थी। सभी प्रान्तों में इस प्रकार के सामुदायिक संगठन उदार, स्वतन्त्र, सुशील, मैत्रीपूर्ण होते थे और उसके सम्पन्न सदस्य दानशील होते थे। हमारे सामाजिक परिवेश की यह निरन्तरता ही हमें चरित्र और आचार का उच्चतम स्तर बनाए रखने को बाध्य करती है। यह हमें अपनी पुरानी सभ्यता के बस्ती-मुहल्लों में देखने को मिलता था। उन दिनों दक्षिण आदि से आने वाले युवक उन प्रलोभनों से मुक्त रहते थे, जिनसे पुरानी नागरिक व्यवस्था के नाश होने के कारण आज का युवा-समाज ग्रसित है। इसका कारण यह भी था कि उस युवक के सम्पर्क में आने वाले बुजुर्गों का परिचय उसके गाँव के साथ रहता था। शिष्टाचार में किसी भी अभद्रता की खबर उसके गाँव के वयोवृद्ध लोगों के पास पहुँच जाती थी। इससे गाँव में उसके परिवार को लज्जा से सिर झुकाना पड़ता था। इस प्रकार व्यक्ति पर नैतिक संयम का एक अद्भुत प्रभाव पड़ता था, जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

ये सब बातें तो ठीक हैं, किन्तु आधुनिक विकास द्वारा हमारे समाज में जो विषम परिस्थिति उत्पन्न हुई है, उसकी हम उपेक्षा नहीं कर सकते। उदाहरणार्थ बिहार के पटना आदि शहरों से कोलकाता में ताँगा चलाने वाले निर्धन मुसलमानों को देखिए। ऐसी जीवन-शैली वाले लोग प्रलोभनों से बुरी तरह से ग्रस्त हैं। ऐसे नगरों में मदिरा की दुकानें भयावह रूप से बढ़ रही हैं। घरों में धार्मिक सभा में एकत्र होने की प्रथा नष्ट होती जा रही है। यदि शहर का जीवन सीधे-सरल ग्रामीण परिवारों के लिए सर्वथा हानिकर हो रहा है, तो इसमें आश्चर्य क्या है?

यह सब सत्य होते हुए भी संसार के अन्य देशों के लोग हमारे देशवासियों से तुलना नहीं कर सकते। नगर के भिन्न परिवेश में परिश्रम करने वाला एक अत्यन्त निर्धन व्यक्ति प्राय: प्रतिकूल परिस्थितियों में अपना जीवन निर्वाह करता है। वह पूरे दिन में केवल एक बार भोजन कर अपनी शेष वेतन-राशि गाँव में अपने परिवार को भेजता है। भारतीय श्रमिकों के इन दिनों के त्याग की गाथा अज्ञात ही रहेगी। हमारे देश का अतिसाधारण ग्रामीण जिस क्षुधा-

संयम का अभ्यास करता है, वह यदि अन्य देश में कोई करता, तो उसे शहीद की उपाधि से विभूषित किया जाता।

विशेषकर हम शहरी छात्र सामाजिक समस्याओं को अच्छी तरह समझ सकते हैं। साधारण जनता के लिए हम क्या कर सकते हैं? साधारण जनता को हम कैसे पुन: शक्तिशाली कर सकते हैं? इसके पुनर्निर्माण के लिए हमें कोई नई सेना खड़ी करने की आवश्यकता नहीं है। हमारे पूर्वजों की प्रचुर धरोहर हमारे पास है। हमारे पास नैतिक-मूल्यों की निधि, नैतिक व समन्वयी संस्थाएँ हैं। आवश्यकता है, तो इसके संरक्षण, उपयोग और विकास की तथा इसे आधुनिक आवश्यकताओं के साँचे मे ढालने की।

प्रत्येक व्यक्ति अपने-आप से पूछे कि क्या वह जानता है कि उसके गाँव से आए हुए शूद्र कहाँ हैं? यदि उसे पता नहीं है तो एकता लाने के अपने कर्तव्य में वह बुरी तरह से असफल हुआ है। क्या कोई समाज के निम्न वर्ग की सहायता कर सकता है? क्या कोई अपने विशेष-अधिकारों में उन्हें सहभागी बना सकता है? इस कार्य को आरम्भ किए बिना कोई समझ नहीं पाएगा कि वे विशेषाधिकार कितने अधिक और कितने उच्च हैं। यदि सभी शहरी छात्र यह व्रत लें कि वे प्रत्येक वर्ष शिक्षा-संसाधनों से वंचित इन लोगों को बारह पाठ पढ़ाएँगे, तो भारतीय विचारधारा में शीघ्र ही एक अद्भुत क्रान्ति आ जाएगी। बारह पाठ सिखाना किसी के लिए कोई बहुत श्रमसाध्य कार्य नहीं है, किन्तु अशिक्षितों को इससे बहुत बड़ी सहायता प्राप्त होगी। शिक्षक कोई भी विषय उन्हें सिखा सकते हैं। शारीरिक व्यायाम की शिक्षा भी प्रदान की जा सकती है। पठन, लेखन, गणित आदि सिखाया जाए तो अच्छा होगा। किन्तु इन सबकी अपेक्षा भूगोल-इतिहास की शिक्षा, विज्ञान के सरल सिद्धान्तों की शिक्षा अथवा अपने दैनन्दिन जीवन के तथ्यों को समझने की शिक्षा देना श्रेष्ठतर होगा।

क्या हमने कभी सोचा है कि कुछ नए विचारों के आत्मसात् करने से जीवन में कितनी सहायता प्राप्त होती है? क्या हमने कभी सोचा है कि मन में बौद्धिक चिन्तन का अंकुरन होने से जीवन धीरे-धीरे कितना उन्नत और विविधतापूर्ण होता है। सचमुच ज्ञान ही जीवन का आहार है। आइए, हम अपनी क्षमता के अनुसार अपने आसपास के सभी लोगों को अविलम्ब ज्ञान प्रदान करें। ○○○

काल से गरजना

राधाकृष्ण कुशवाहा

**स्वरूप छोड़कर के कुछ भी अपना नहीं,
विषय कल्पना को भवबन्धन समझना ।
काम क्रोध लोभ मोह साक्षात् नरक द्वार,
आशा कामनाओं में कभी न उलझना ।
मन का ही मोह-राग माया का प्रबल रूप,
तृष्णा की राक्षसी को प्रतिक्षण बरजना ।
त्याग सब विकारों को, सद्‌गुण को धारणकर,
होकर स्वरूपस्थ फिर तो काल से गरजना ।।**

सब बूँद भाई-भाई हैं

धर्मेन्द्र मौर्य 'अकिंचन'

मात वसुधा के सुपुत्र हैं सब जन,
प्रति मनु हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख ईसाई हैं ।
चन्द्र देता शीतलता रवि सम ताप सब
एक ही जलधि के सब बूँद भाई-भाई हैं ।
पावक जलाये, मेघ जल बरसाये सम,
मारुत सुखाये सर्वत्र प्रीति छाई है ।
संत-वसंत देते हमें पीत परिधान,
करते नहीं कोई भेद-भाव भाई हैं ।

माँ बिन जीवन उन्मन मेरा

जितेन्द्र कुमार तिवारी, कोरबा

माँ बिन जीवन उन्मन मेरा ।
विपदाओं ने हर क्षण घेरा ।।
माँ की ममता भूल न पाता,
सुखद शान्ति का पावन डेरा ।
जब जब माँ की याद सताई,
पाया मैंने दुख-घनेरा ।।
सुविधाओं की सूरज माँ थी,
माँ के बिन है आज अँधेरा ।
करुणा कृपामयी माँ प्यारी,
मुझ पर भार ऋण है तेरा ।।

पुस्तक समीक्षा

प्रत्यावर्तन (उपन्यास)
लेखक – नरेन्द्र कोहली
प्रकाशक – हिन्दी पाकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड जे-४०, जोरबाग लेन, नई दिल्ली - ११०००३
पृष्ठ - २९६ मूल्य – १९५/-

समकालीन हिन्दी साहित्य गगन में ध्रुवतारा के समान जगमगाने वाले कालजयी उपन्यास 'तोड़ो कारा तोड़ो' के रचयिता श्री नरेन्द्र कोहली जी से सभी परिचित हैं। इन्होंने राम-कथा, कृष्ण-कथा, पांडव कथा और स्वामी विवेकानन्द के जीवन पर आधारित लगभग १०० उपन्यास शृंखलाओं की रचना की। इन रचनाओं ने जनमानस-पटल पर अमिट छाप छोड़कर इन्हें लोकप्रिय बना दिया है। रचनाओं में 'वसुदेव' और 'पूत अनोखो जायो' को समाज में विशेष स्थान प्राप्त है।

लेखक स्वामी विवेकानन्द से बहुत प्रभावित हैं। स्वामीजी का संघर्षमय जीवन और उनके उदात्त विचारों में राष्ट्रीय और वैश्विक समस्याओं का समाधान दीखता है। स्वामी विवेकानन्द विश्व मानवता की विरासत हैं, जिन्होंने विश्व को प्रेम, शान्ति और समृद्धि का सन्देश दिया। इसीलिये लेखक ने स्वामीजी के जीवन चरित को सरस, सरल भाषा में जन-जन तक पहुँचाने के लिये 'तोड़ो कारा तोड़ो' का प्रणयन किया।

इन्हीं उपन्यासों की शृंखला में सद्य: प्रकाशित उपन्यास 'प्रत्यावर्तन' है, जो स्वामी विवेकानन्द के जीवन पर आधारित है। प्रत्यावर्तन में भी लेखक ने अपने पूर्व परिचित संवाद शैली का सम्यक् प्रयोग किया है। स्वामीजी ३ वर्षों तक पाश्चात्य देशों में रहकर सनातन हिन्दू धर्म की ध्वजा विश्व शृंग में फहराने के बाद भारत में वापस आये। उनकी वापसी, उनका देश में प्रत्यावर्तन भारतीयों के गौरव का प्रत्यावर्तन था, भारत के खोये आत्मविश्वास का प्रत्यावर्तन था, भारत के पुनरुत्थान का प्रत्यावर्तन था, भारतीय जागरण के शंखनाद का प्रत्यावर्तन था, भारतीयों के भाग्य-विधाता का प्रत्यावर्तन था, भारतीय स्वतन्त्रता के अग्रदूत का प्रत्यावर्तन था, भारत के दीन-दुखियों के पुनरुद्धार का प्रत्यावर्तन था।

इन्हीं भावों से अनुप्राणित है कोहलीजी का यह उपन्यास 'प्रत्यावर्तन'। इसमें ३३ पदच्छेद हैं। इसका प्रारम्भ स्वामीजी की फ्रांसीसी तट पर स्थित कलाई यात्रा से होता है, जिनमें उनके साथ उनके कुछ विदेशी मित्र भी हैं। आगे स्वामीजी के साथ सेवियर दम्पती का संवाद है, जिसमें श्रीमती सेवियर कहती हैं, "अभी तक मन को शान्ति नहीं मिली। संसार में इतने मतवाद हैं, इतने दिव्य पुरुष, अवतार, सन्त, गुरु, नबी और औलिया हैं। स्वयं ईश्वर भी हैं और ईश्वर के पुत्र भी, किन्तु उनमें से किसी ने हमारे लिये सत्य का द्वार नहीं खोला ...।" ...

"अब तक तो हम परम्पराओं पर ही आश्रित हैं। रीति-रिवाज, शास्त्र-ग्रन्थ, कर्मकाण्ड, आचार-व्यवहार ने ही धर्म का स्थान ग्रहण कर रखा है। सात्त्विकता, दिव्यता और निर्मलता की खोज है।"

स्वामीजी कहते हैं – "वे सब भी तो धर्म-यात्रा के प्रारम्भिक पड़ाव हो सकते हैं माँ।" इस 'माँ' के सम्बोधन से ही स्वामीजी सेवियर दम्पती के सदा के पुत्र हो गये और उन दम्पती ने मायावती, हिमालय में अद्वैत आश्रम की स्थापना की।

विदेशों में रहते समय स्वामीजी का मन भारत के लिए कितना बेचैन है, इसका लेखक ने स्वामीजी के साथ निवेदिता के संवाद में दिखाया है। स्वामीजी निवेदिता को भारत आने की अपनी व्याकुलता और योजनाओं को बताते हैं – "मेरा पुराना देश मुझे पुकार रहा है। मुझे जाना ही होगा। अप्रैल में रूस जाने की योजनाओं से विदा। भारत में कार्य को आरम्भ कर फिर अमेरिका और इंगलैंड। अब कोलकाता में एक केन्द्र आरम्भ करने जा रहा हूँ, दूसरा हिमालय में। हिमालयवाला एक पूर्ण पर्वत होगा, ७००० फुट की ऊँचाई पर।..."

लेखक ने स्वामीजी के विक्टोरिया हॉल में दिये व्याख्यान का उल्लेख किया है, जिसमें वे आध्यात्मिक अनुभूति की शर्त बता रहे हैं – "वह ज्ञान, जिसकी वेद शिक्षा देते हैं, ऋषि होने के बाद प्राप्त होता है, किन्तु ऋषियों का अस्तित्व केवल प्राचीन काल तक ही सीमित नहीं है। जब तक आपमें से प्रत्येक व्यक्ति ऋषि नहीं बन जायेगा और आध्यात्मिक सत्यों को साक्षात् नहीं देखेगा, आपके लिये धार्मिक जीवन आरम्भ नहीं हुआ है। धर्म पुस्तकों में नहीं है, न ही सिद्धान्तों और धार्मिक मतों में है। वह होने और हो जाने में है।"

पुस्तक के मुख पृष्ठ पर स्वामीजी का भव्य चित्र है। यह पुस्तक अद्भुत है। यह नये तथ्यों से पूर्ण एवं रोचक ज्ञानपरक संवादों से पाठक को ज्ञान के साथ प्रसन्नता प्रदान करती है। इस कृति हेतु नरेन्द्र कोहलीजी श्लाघनीय हैं । ○○○

समाचार और सूचनाएँ

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, नारायणपुर में राष्ट्रीय युवा दिवस मनाया गया, जिसमें आसपास के ४८ विद्यालयों के ११००० बच्चों ने भाग लिया। आश्रम द्वारा बहुत बड़ी शोभायात्रा भी निकाली गयी। २१ जनवरी, २०१७ को किसान मेला का आयोजन किया, जिसमें ७००० किसान सम्मिलित हुये।

रामकृष्ण मिशन सोसाईटी, जमशेदपुर में युवा-शिविर और पुरस्कार वितरण समारोह सम्पन्न हुआ। आश्रम द्वारा २७ शिक्षा संस्थानों में निबन्ध और पाठ-आवृत्ति प्रतियोगिताएं आयोजित कराई गईं, जिसमें १०४७ विद्यार्थियों ने भाग लिया। उनमें से ७३ को प्रथम, ६१ को द्वितीय, और ४६ को तृतीय, कुल १८० छात्र-छात्राओं को पुरस्कार दिये गये। सभा को रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द सोसाइटी, जमशेदपुर के सचिव स्वामी अमृतरूपानन्द जी महाराज और रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने सम्बोधित किया। छात्र-छात्राओं ने विविध गीत, संगीत, नृत्य आदि मनमोहक सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये। सभा का संचालन स्वामी करुणामयानन्द जी ने तथा धन्यवाद-ज्ञापन स्वामी इष्टप्रेमानन्द जी ने किया।

राष्ट्रीय युवा दिवस पर आयोजित प्रतियोगिताएँ

रामकृष्ण मठ, चेन्नई द्वारा आयोजित प्रतियोगिताओं में ४१० स्कूलों और ३० कॉलेजों के ४३,००० विद्यार्थियों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मिशन, मदुरै द्वारा आयोजित प्रतियोगिताओं में १७८ शिक्षा संस्थानों के १६,४१२ विद्यार्थी सम्मिलित हुये।

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, मुजफ्फपुर के द्वारा आयोजित प्रतियोगिताओं में ४० स्कूलों के ५००० विद्यार्थियों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मठ, नागपुर द्वारा प्रतियोगिताओं में ३१ गाँवों में स्थित ६० विद्यालयों के ५३९४ विद्यार्थियों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मठ, राजकोट द्वारा आयोजित प्रतियोगिताओं में १६० स्कूल-कॉलेज के ८१४७ विद्यार्थियों ने भाग लिया।

विवेकानन्द हवाई अड्डा, रायपुर के सभागृह में प्रात: ९ बजे स्वामी विवेकानन्द जी की जन्म-जयन्ती मनाई गयी। सभा में स्वामीजी के जीवन-दर्शन पर सप्रसंग चर्चा हुई। सभा को स्वामी प्रपत्त्यानन्द और हवाई अड्डा के निदेशक श्री संतोष ढोके जी ने सम्बोधित किया। प्रश्नोत्तर सत्र का भी आयोजन हुआ, जिसमें नैतिकतापूर्वक सेवा करने पर जोर दिया गया।

पं. रविशंकर विश्वविद्यालय के विवेकानन्द पीठ, द्वारा आयोजित सभा में स्वामी निखिलेश्वरानन्द और पीठाध्यक्ष डॉ. ओमप्रकाश वर्मा ने सभा को सम्बोधित किया।

रामकृष्ण-विवेकानन्द विद्यापीठ, बिजुरी में राष्ट्रीय युवा दिवस मनाया गया, जिसमें वहाँ के प्राचार्य श्री एस. के. सिंह जी ने छात्रों को सम्बोधित किया। रामकृष्ण सेवा समिति के श्री गोपेन्द्र लाल घोष के नेतृत्व में विद्यार्थियों ने नगर में विशाल रैली निकाली और कालोनी के चौराहे पर नुक्कड़ नाटक भी किया।

रामकृष्ण सेवा मंडल, भिलाई, विवेकानन्द जयन्ती मनायी गयी, जिसमें स्वामी निखिलेश्वरानन्द, डॉ. ओमप्रकाश वर्मा और विवेकाननन्द तकनीकि विश्वविद्यालय, भिलाई के कुलपति ने सभा को सम्बोधित किया।

विवेकानन्द उत्कर्ष परिषद, बेमेतरा में १२ जनवरी को राष्ट्रीय युवा दिवस मनाया गया, जिसमें प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों के छात्र-छात्राओं ने भाग लिया।

रामकृष्ण विवेकानन्द सोसाईटी, धनबाद में युवा महोत्सव के दिन निबन्ध, भाषण, पाठ-आवृत्ति, वाद-विवाद, चित्रकला की प्रतियोगिताएँ हुईं, जिसमें ४५० छात्रों ने भाग लिया। ○○○